मासिक समाचार पत्र

लोकविद्या पंचायत

● सूचना युग में बराबरी के विचार के पुनर्निर्माण का पत्र ●
● लोकविद्याधर समाज के पुनर्संगठन का वैचारिक आधार पत्र ●
● पूँजी आधारित समाज के स्थान पर ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का विचार पत्र ●

वर्ष 1 , अंक 3 , कुल पृष्ठ : 8 | 5 जुलाई 2011 | सहयोग राशि : 5 रुपये

जमीन नहीं देंगे

पोस्को परियोजना के खिलाफ किसानों की हुंकार

पोस्को के लिए फिर से दोबारा गांव वालों की जमीनें छीनने का काम शुरू हो गया है। पर्यावरण मंत्रालय की हरी झंडी के चलते 17 मई से पुलिस प्रशासन अधिग्रहण पर आमादा है। उड़ीसा के जगतसिंहपुर जिले के नौगांव, गडकूपंगा, धिनकिया और गोविन्दपुर गांव अपनी तबाही के खिलाफ जंग पर उतर आए हैं। संघर्ष के नए-नए तरीके ईजाद किए जा रहे हैं। महिलाएं और बच्चे उन जमीनों पर ही आकर बस से गए हैं। बच्चों के लिए वही स्कूल चलते हैं। लेकिन पूरा इलाका सरकार की दरिंदगी के खौफ में जी रहा है। कुल 3700 एकड़ जमीन के लिए दिल्ली और भुवनेश्वर की सरकारें अपने ही लोगों के लिए राक्षस बन गई है और वो भी किसके लिए, एक विदेशी कंपनी के लिए।

पोस्को परियोजना स्थल पर धरना देते किसान परिवार और पढ़ाई करते उनके बच्चे

पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति पिछले छः वर्षों से यह जन-प्रतिरोध संगठित कर रही है। यह समिति व्यापक साधुवाद और समर्थन का हक रखती है। देशभर में किसानों और आदिवासियों की जमीनें छीनने का जो राक्षसी प्रशासनिक कार्य चल रहा है उसके खिलाफ व्यापक एकता की जरूरत है। एक ऐसी दुनिया बनाने के विचार की भी जरूरत है जिसमें एक को उजाड़कर दूसरे के विकास के लिए कोई स्थान न हो।

•

सथवां के किसानों के आगे प्रशासन की एक न चली

दिलीप कुमार 'दिली'

वाराणसी में सारनाथ क्षेत्र के चार गांवों की जमीन सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट बनाने के लिए अधिग्रहित करने की घोषणा प्रशासन ने कर दी थी। ग्राम सथवां, हृदयपुर, रजनहिया, घूरीपुर की कुल 176 बीघा जमीन का अधिग्रहण सरकार बिना पूर्व सूचना के करना चाहती थी। शहर में चारों तरफ सड़कों को खोदकर बड़ी-बड़ी पाइप बिछाने के काम शुरू कर दिए गए। यह काम काफी आगे बढ़ जाने के बाद सथवां में जमीन का मुआयना करने तहसीलदार व अन्य अधिकारी पहुंचे। किसानों के कान खड़े हो गए। धारा 4 लगाकर जमीन की खरीद-बिक्री का मालिकाना हक खत्म कर दिया। इस योजना के लिए किसानों से संपर्क कर राय भी न ली गई और उन्हें आपत्ति करने की धारा 5(क) के अधिकार से वंचित कर दिया गया। सीधे धारा 17 का प्रकाशन कर जबरदस्ती किसान से जमीन ले लेने का निर्णय ले लिया गया। इस बाबत जब गांव के कुछ किसान कमिश्नर व जिलाधिकारी से मिले तो जवाब मिला कि जमीन सरकारी है। सड़क-बिजली सब सरकारी है। जमीन तो ली जाएगी। जो मुआवजा बनता है, ले लो। किसानों ने कहा—''जमीन से जीविका का झीरा है, हीरा खत्म हो जाएगा, जमीन का झीरा न खत्म होगा। हम जान देंगे पर जमीन नहीं देंगे।'' लगभग 60 दिनों तक चले धरने के दौरान प्रभात फेरियां निकाली गईं। नारे लगाए गए—

''गांव न लेगा शहर का गंदा, बंद करो अब यह धंधा।''
''शर्म करो उस तकनीक पर जो दीनापुर में हो गई फेल।''
''जनम-जनम का नाता है, धरती हमारी माता है।''

सथवां के किसानों के समर्थन में वाराणसी जिले में कई जगह हो रहे विस्थापन के विरोध में संघर्षरत किसान भी आ गए, करसड़ा में कूड़ा डम्पिंग प्लांट बनने का विरोध कर रहे किसान, डोमरी व कटेसर में सांस्कृतिक संकुल बनाने का विरोध कर रहे किसान और ट्रांसपोर्ट नगर के बनने का सशक्त विरोध करने वाले मोहनसराय के किसान। भारतीय किसान यूनियन और लोकविद्या मंच ने सथवां के किसानों के संघर्ष को अराजनैतिक बनाए रखने पर जोर देते हुए इस संघर्ष को जीतने तक साथ दिया। अंततः जिलाधिकारी ने किसानों की जमीन नहीं ली जाएगी व संबंधित धाराएं रद्द की जाएंगी इसका लिखित पत्र किसानों को दिया। सथवां के संघर्ष के बारे में विस्तृत लेख पेज 7 पर पढ़ें।

•

घोषणा

लोकविद्या जन आंदोलन

पहला अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन : 12-14 नवंबर 2011, वाराणसी

विद्या आश्रम आपको 12-14 नवंबर 2011 के बीच होने वाले लोकविद्या जन-आंदोलन के पहले अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन में भाग लेने के लिए आमंत्रित करता है। यह अधिवेशन वाराणसी में विद्या आश्रम के सारनाथ परिसर में होगा।

जन-आंदोलन और ज्ञान का दृष्टिकोण : विस्थापन आज भारत में सामाजिक आंदोलनों का सबसे बड़ा सरोकार बन गया है। यह विस्थापन जमीन, घर, रोजगार, संसाधन और बाजार सभी से हो रहा है। किसानों के आंदोलन प्रमुख रूप से कृषि उत्पादन का दाम हासिल करने के लिए, कर्ज और बिजली के लिए तथा जबरदस्ती किए जा रहे भूमि अधिग्रहण के खिलाफ होते रहे हैं। आदिवासियों और स्थानीय समाजों के आंदोलन घर, जमीन और जंगल से बेदखली तथा पर्यावरणीय विनाश के खिलाफ चलते रहे हैं। शहरी गरीबों और झोपड़पट्टियों में रहने वालों के संघर्ष हमेशा ही विस्थापन के विरोध में और सामान्य नागरिक व सामाजिक अधिकारों को हासिल करने के लिए होते रहे हैं। वैश्विक बाजार और बड़ी पूंजी की घुसपैठ द्वारा स्थानीय बाजार को तहस-नहस करने के खिलाफ कारीगर और ठेले-गुमटी पर धंधा करने वाले बड़े पैमाने पर लामबंद होते रहे हैं। ये सभी आंदोलन कुछ समय से विस्थापन के विरोध के एक व्यापक आंदोलन का रूप ले रहे हैं। एक तरफ शासन और प्रशासन की नई व्यवस्थाएं इस प्रतिरोध को बड़े पैमाने पर दबाने में लगी हुई हैं, तो दूसरी तरफ लोगों के साथ खड़े सामाजिक कार्यकर्ता एक नई जन एकता को आकार देने के रास्ते खोज रहे हैं।

ये सब विस्थापन के शिकार लोग और समाज ऐसे हैं जो कभी कालेज नहीं गए हैं और अपनी जिन्दगी लोकविद्या के बल पर चलाते हैं। लोकविद्या उनका अपना वह ज्ञान है जो उन्होंने विरासत में प्राप्त किया है; काम के स्थान पर, समाज में और सहकर्मियों से सीखा है और जिसको उन्होंने अपनी जरूरत, अनुभव और प्रयोगों के बल पर अपनी तर्क-बुद्धि से प्रभावी और समसामयिक बनाया है। विस्थापन उनकी जिन्दगी की चौखट में ऐसे बदलाव ले आता है जिनके चलते वे लोकविद्या, यानि अपने ज्ञान के इस्तेमाल से वंचित हो जाते हैं और बाजार में एक सस्ते मजदूर के रूप में खड़े कर दिए जाते हैं। लोकविद्याधर समाज का लोकविद्या से रिश्ता टूटने की इस प्रक्रिया का हर हालत में मुकाबला करना जरूरी है। वास्तव में लोकविद्या, यानि लोगों का सोचने का तरीका, उनके मूल्य, उनका संगठन का तरीका, उनका हुनर, ज्ञान, सौन्दर्य बोध और नैतिक संवेदनाएं, कुल मिलाकर उनकी ज्ञान की दुनिया ही उनकी शक्ति का प्रमुख स्रोत है। भारत में और सारी दुनिया में फैले किसानों, आदिवासियों, कारीगरों, छोटा-छोटा धंधा करने वालों और विविध स्थानीय समाजों के बीच यदि कुछ समान है, तो वह लोकविद्या ही है। यही इन सबके बीच एकता की कड़ी है। यह समझना जरूरी है कि आज मुक्ति का रास्ता ज्ञान की दुनिया से होकर गुजरता है। लोकविद्या दृष्टिकोण सूचना युग का जनता का दृष्टिकोण है।

लोकविद्या का दावा : दुनियाभर में किसान और आदिवासी एक नया दावा पेश कर रहे हैं। अपनी-अपनी भाषा में और अपने-अपने तरीकों से वे यह कह रहे हैं कि अपने ज्ञान, मूल्यों और विश्वासों के साथ जीना और वह सब ज्ञान प्राप्त करना जो वे चाहते हैं, ये उनके जन्मसिद्ध अधिकार हैं। इन्हें उनसे छीना नहीं जा सकता। एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका में नए किस्म की हलचल दिखाई दे रही है, जिसमें पूरी दुनिया के शोषित, उत्पीड़ित एवं विस्थापित लोगों की एक नई एकता के संकेत हैं। इस बार इस एकता का आधार लोकविद्या में होना है यानि उनके इर्द-गिर्द के समाजों और प्रकृति की उनकी समझ में जो समान है, उसमें होना है।

इसका यह अर्थ है कि किसानों और आदिवासियों, कारीगरों और महिलाओं तथा छोटा-छोटा धंधा करने वालों और मजदूरों को लोकविद्या का दावा पेश करना चाहिए। यह कोई जीविकोपार्जन की जरूरत भर का दावा नहीं है, यह एक नई दुनिया बनाने का दावा है। उन्हें यह दावा पेश करना है कि पूंजी और ज्ञान के व्यवसायीकरण को केवल लोकविद्या ही बुनियादी चुनौती दे सकती है। उन्हें यह दावा भी पेश करना है कि सत्य व सामाजिक और आर्थिक बराबरी के समाज का ज्ञान का आधार केवल लोकविद्या में है। हमें यह समझना होगा कि जब तक ये दावे पेश नहीं किए जाते, तब तक हम बुनियादी सामाजिक परिवर्तन के अपने असरहीन पूर्वाग्रहों में फंसे रहेंगे। ऐसा लोकविद्या-ज्ञान का दावा हमारे विचारों और कार्यों में एक नई और वास्तविक उड़ान भर दे सकता है, जो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में नई सोच को जन्म दे। ऐसे दावों को आकार देने की प्रक्रिया ही लोकविद्या जन-आंदोलन है।

लोकविद्या जन-आंदोलन (लो. ज. आ.) : वैश्विक आर्थिक और पर्यावरणीय संकट ने उन विचारों और संस्थाओं को बेनकाब कर दिया है, जिन्होंने बड़े पैमाने पर लोगों को भूखा मारकर और प्रकृति

... शेष पृष्ठ 8 पर

वाराणसी शहर के आस-पास जमीन अधिग्रहण के खिलाफ किसानों के संघर्षों पर विशेष पृष्ठ 7–8 पर

शिक्षा एक राष्ट्रीय संसाधन है

यह अंक शिक्षा पर विशेष है। लोकविद्या दृष्टिकोण से शिक्षा के अर्थ और अनर्थ पर चर्चाएं की गई है। हम शिक्षा को एक राष्ट्रीय संसाधन मानते हैं। यह नहीं कि शिक्षा के बल पर मानव संसाधन तैयार होता है बल्कि यह कि शिक्षा स्वयं एक संसाधन है। चरित्र निर्माण, जीवन यापन, समाज निर्माण सभी के लिए शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण संसाधन है। यह एक राष्ट्रीय संसाधन है, इसके दो अर्थ हैं। एक, यह कि स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, प्रयोगशालाएं, अनुसंधान संस्थान, शिक्षक व शोधकर्ता सभी को बनाने में राष्ट्र की पूंजी लगी है। दूसरा, यह कि इस राष्ट्र के संचालकों यानि सरकारों, प्रशासकों, शिक्षकों सभी की यह जिम्मेदारी है कि इस देश के हर नागरिक का शिक्षा पर बराबर का हक तामील हो, वह ढांचा और व्यवस्थाएं बनाईं जाए जिससे शिक्षा का बराबर का बंटवारा हो। कुल मिलाकर बात यह है कि गांव और शहर, कस्बों और महानगरों तथा बस्तियों, कालोनियों या बंगलों में रहने वाले सभी घरों के बच्चों और नौजवानों को बराबर की शिक्षा के वास्तविक मौके होने चाहिए।

•

शिक्षा और ग्रामीण नौजवान

सुनील सहस्त्रबुद्धे

गांव के नौजवानों और कारीगर व मजदूर बस्तियों में बड़े हो रहे बच्चों के लिए आज की शिक्षा व्यवस्था में क्या है? इनमें से जो बच्चे प्रतिस्पर्धाओं के जरिए उच्च शिक्षा में प्रवेश हासिल कर पाते हैं और एक खुशहाल जिन्दगी का रास्ता बना पाते हैं उनकी संख्या नगण्य है। वे ऐसा क्यों नहीं कर पाते यह सभी जानते हैं। समय, पैसा, स्थान, माहौल, पढ़ाने वाले कुछ भी उन्हें उपलब्ध नहीं। उच्च शिक्षा के बड़े स्थानों पर आए 2-4 छात्र-छात्राओं के बारे में यह जानकारी हासिल करें कि किन सुविधाओं में पलकर और पढ़कर वे वहां तक पहुंचे हैं तो खुद-ब-खुद समझ में आ जाएगा कि गरीब घर के बच्चों के सपनों में भी ऐसे खयाल नहीं आ सकते। पहले तो 12वीं तक पहुंचते ही बहुत कम ग्रामीण नौजवान हैं, लेकिन यदि 12वीं में पढ़ने वाले सारे छात्रों को लिया जाय तो उनका एक बहुत छोटा-सा अंश बड़ी प्रतियोगिताओं की तैयारी करता है और उसका भी एक छोटा-सा अंश ही कामयाब होता है। आरक्षण के जरिए पिछले और अनुसूचित वर्गों के लिए एक रास्ता बनाया गया जो अब गांवों तक नहीं पहुंचता है, बल्कि उन वर्गों के ही सुविधा सम्पन्न शहरी परिवारों में आकर रुक जाता है। इस शिक्षा व्यवस्था में मेरिट (प्रतिभा) के लिए कोई स्थान नहीं। प्रतियोगिताओं के जरिए जो मेरिट पर आधारित वरीयता क्रम की व्यवस्था सामने आती है उसमें भाग लेने वाले छात्रों का प्रतिशत 10% से भी कम आएगा। यह तो ईसा पूर्व यूनान की नगर राज्य की व्यवस्थाओं जैसा हो गया। उन नगर राज्यों में हर एक नागरिक पर 16 गुलाम होते थे यानि लगभग 5% नागरिक और शेष 95% दास। लगता है शिक्षा की व्यवस्था दास प्रथा पर आधारित समाज व्यवस्था से बड़ा मेल खाती है।

सरकार के पास इसका कोई हल नहीं है। वास्तव में इसके हल के लिए सरकार की ओर देखना ही गलत है क्योंकि इस देश की सरकारों ने ही इस पूरी व्यवस्था का निर्माण किया है। यह सही है कि इस शिक्षा व्यवस्था की नींव अंग्रेजों ने डाली लेकिन उसे बड़े पैमाने पर विस्तार देने और मजबूत बनाने का काम आजाद हिन्दुस्तान की सरकारों ने ही किया है। केन्द्र की सरकारें और राज्यों की सरकारें, सभी इसमें पूरी तरह भागीदार हैं। 8वीं तक की शिक्षा के अधिकार का कानून बनाना, आई.टी.आई. खोलना, हाईस्कूल तक सभी को पास करना, फीस माफ करना, बस्ता और यूनिफार्म बांटना और मध्याह्न भोजन देना, यह सब एक बड़ा मजाक है, भुलावा है, गरीब लोगों की गरीबी के साथ खिलवाड़ है। बेरोजगारों की फौज आक्रामक न हो जाए इसके लिए तरह-तरह की योजनाएं, व्यावसायिक शिक्षा में सुविधाएं आदि समय-समय पर लागू की जाती हैं। जिसके पास कुछ नहीं है और जिसका भविष्य अंधकारमय है, वह इस भूलभुलैया में चक्कर लगाता रहता है। शासक वर्ग और बुद्धिजीवी यह जानते हैं कि नतीजा सिफर होना है, ग्रामीण नौजवानों और शहरी बस्तियों में बड़े होने वाले बच्चों को मजदूर ही बनना है। वे जानते हैं कि हिसाब लगाकर यह करना जरूरी है, उन्हें उनके पैतृक और पारंपरिक धंधों से तोड़कर शिक्षा की भूल-भुलैया में खींचकर और वहां उन्हें फेल करके मजदूरों की वह फौज तैयार करनी है, जो थोड़ा-बहुत टेक्नीकल काम जानती हो और थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना जानती हो। उन्हें मिस्त्री कह लीजिए, टेक्नीकल स्टाफ कह लीजिए, क्लर्क या कम्प्यूटर टाइपिस्ट कह लीजिए, इन मजदूरों के बगैर यह व्यवस्था नहीं चलनी है, जहां लखपति-करोड़पति बनते चले जाए, करोड़पति अरबपति बनते चले जाए और 25 साल के अति उच्च शिक्षित लड़कों को 1 लाख रुपये महीने से ज्यादा की तनख्वाह मिले। तो रास्ता क्या है?

पहली बात तो यह समझ लेना चाहिए कि आधुनिक शिक्षा की व्यवस्थाओं में इतनी जगह ही नहीं है कि इसके मार्फत सारे ग्रामीण नौजवानों का भविष्य बने। भविष्य बनाने के दो रास्ते होते हैं। एक, पूंजी का रास्ता और दूसरा, ज्ञान का रास्ता। आज का समाज पूंजी पर आधारित है इसलिए पूंजी का रास्ता व्यापक रास्ता है। जिसके पास पूंजी है वह अपना भविष्य बना ले सकता है। इस समाज में ज्ञान का रास्ता संकुचित है। आधुनिक उच्च शिक्षा के अलावा किसी और ज्ञान के बल पर भविष्य नहीं बनाया जा सकता। कृषि, स्वास्थ्य रक्षा, गृह निर्माण, पशु-पालन, बिनकारी, लकड़ी, मिट्टी, चमड़ा, धातु, सभी के काम का ज्ञान रखने वाले किसान व कारीगर अपने समाज में हैं। समाज में विस्तृत तौर पर फैली इन विधाओं को लोकविद्या कहा जाता है। लेकिन लोकविद्या के बल पर भविष्य बनाने के रास्ते इस समाज में नहीं हैं। यही मुख्य कारण है कि किसानों और कारीगरों के घरों के नौजवानों का भविष्य अंधकारमय रहता है। कारण यह नहीं है कि वह उच्च शिक्षा तक नहीं पहुंच पाता बल्कि कारण यह है कि लोकविद्या का आर्थिक मूल्य नगण्य है। यही कारण है कि किसान और कारीगर परिवार गरीब हैं और उन्हें सामाजिक सम्मान नहीं है। जिसके चलते उनके बच्चे थोड़ा-बहुत पढ़-लिख जाएं तो भी ढंग की कमाई का कोई काम नहीं पाते। इसलिए हल दूर-दूर तक उच्च शिक्षा के विस्तार में नहीं है। या यों कहें कि आधुनिक शिक्षा के विस्तार में नहीं है। हल केवल उन व्यवस्थाओं के निर्माण में है जिनमें किसानों, कारीगरों और छोटा-छोटा धंधा करने वालों के ज्ञान को आर्थिक मूल्य मिलता है और समाज में सम्मान मिलता है। यह ज्ञान पर आधारित समाज में ही हो सकता है, पूंजी पर आधारित समाज में नहीं। तो नौजवानों के लिए रास्ता क्या है?

लोकविद्याधर समाज के नौजवानों को लोकविद्या नौजवान संगठन बनाने चाहिए। इन संगठनों का प्रमुख उद्देश्य लोकविद्या के लिए आर्थिक मूल्य और समाज में सम्मान हासिल करना है। यह संघर्ष का रास्ता है। पूंजी पर आधारित समाज को ज्ञान पर आधारित समाज में तब्दील करना कोई जोड़-तोड़ का काम नहीं है। आधुनिक शिक्षा के इर्द-गिर्द खड़ी की गई आज की व्यवस्था को उखाड़ फेंके बगैर लोकविद्याधर समाज के नौजवानों के लिए कोई रास्ते नहीं बनने हैं। इन नौजवानों का भविष्य समाज की इस व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव की मांग करता है। नौजवानों के संगठन ऐसे ही उद्देश्य के लिए बनाए जाने चाहिए।

•

लोकविद्या नौजवान सभा

लोकविद्याधर समाज के बच्चे शिक्षा और शिक्षा के लाभ दोनों से वंचित हैं। यानि पहले तो वे ऐसी शिक्षा ही नहीं प्राप्त कर पाते, जिसके चलते समाज में कोई जगह बनती हो और दूसरे कभी-कभार ऐसा हो भी जाए तो वे पैसे वाले घरों के अंग्रेजीयत में सराबोर अभ्यर्थियों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते, जीवन-संस्कृति बाधा बन जाती है। किसान, कारीगर, छोटा-छोटा धंधा करने वाले और आदिवासी ये ही मोटे तौर पर लोकविद्या के स्वामी हैं। इनकी विद्या को न आर्थिक मूल्य है, न सामाजिक सम्मान। ये सब सर्वथा गरीब हैं और समाज में हिकारत की नजर से देखे जाते हैं। इनके जिन्दगी जीने के तरीके देसी हैं। इनके बच्चे कितनी भी कोशिश कर लें वे व्यावसायिक वर्गों के अंग्रेजी पढ़े बच्चों से अलग ही दिखाई देंगे और उनमें से कुछ पढ़-लिख जाएं तो भी समाज में बराबरी का स्थान हासिल नहीं कर पाएंगे।

लोकविद्याधर समाज के नौजवानों को अपना अलग संगठन बनाना चाहिए। उसका नाम होना चाहिए—लोकविद्या नौजवान सभा। यह संगठन लोकविद्या के लिए आर्थिक मूल्य और सामाजिक सम्मान की लड़ाई लड़ेगा। लोकविद्याधर समाज के नौजवानों के लिए उच्च शिक्षा का आकर्षण एक मृग मरीचिका के अलावा कुछ नहीं है। जिनके पास ऊंट हैं वे आगे निकल जाएंगे और बाकी प्यासे तड़पते रहेंगे। केवल अपने बारे में न सोचकर समाज के बारे में सोचा जाय तो यह सब समझने में कोई दिक्कत नहीं है। लोकविद्या नौजवान सभा बनाने के लिए वे नौजवान आगे आएं जो व्यक्तिगत सोच से उठकर सामाजिक सोच को अंगीकार करने की तैयारी रखते हैं। एक कार्यक्रम विचार के लिए नीचे दिया जा रहा है।

लोकविद्या नौजवान सभा–

- लोकविद्याधर परिवारों के सभी तरह के रोजगारों (किसानी, कारीगरी, दुकानदारी आदि) में आवश्यक संसाधनों के अभाव और बाजार में उनके उत्पादन, श्रम और ज्ञान के मूल्य को चुराने वाली सरकारी नीतियों के खिलाफ आवाज उठाएगी।
- दोहरी शिक्षा व्यवस्था खत्म हो, शिक्षा जगत में अंग्रेजी और अंग्रेजियत का माहौल खत्म हो तथा उच्च शिक्षा के अवसर सभी युवाओं के लिए बराबर हो, इसके लिए आवाज बुलंद करेगी और अवसरों को रोकने वाली हर नीति की खिलाफत करेगी।
- रोजगार के क्षेत्र में लोकविद्याधर परिवारों के युवाओं को विशेष वरीयता मिले, इसकी पुरजोर वकालत करेगी।
- सभी तरह के रोजगारों की तनख्वाहों में 1 : 5 के अनुपात से अधिक का अंतर न हो, इसके लिए व्यापक जनमत बनाएगी।

•

विश्वविद्यालय की दीवारें टूटें!

(इस अंक की प्रासंगिकता के चलते मार्च 2010 में प्रकाशित यह रिपोर्ट फिर से दी जा रही है।)

समाज में पंचायते तो कई तरह की होती रही है। शादी-उत्सव के आयोजन पर, आपसी विवादों को सुलझाने या प्राकृतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक संकटों का सामना करने जैसे मुद्दों पर पंचायतें बुलाई जाती रही है और इनमें सबकी राय से हल निकाले जाते रहे हैं। ऐसी पंचायतों की ही तर्ज पर आजकल कई मुद्दों पर जन-सुनवाई हो रही हैं, जैसे नरेगा पर, मानव अधिकारों पर, बी. टी. बैंगन पर, बुनकरी पर आदि। पहले की पंचायत और जन-सुनवाई में फर्क यह है कि पंचायते समाज के अंदर ही लोग स्वयं अपनी जरूरत से बुलाते रहे हैं। जन-सुनवाई सरकारों की पहल पर या यूँ कहे कि समाज के बाहर से प्रयास पूर्वक समाज के अंदर आयोजित की जा रही हैं। इसमें क्या अच्छाई या बुराई है उस पर फिलहाल हम नही जायेंगे। लेकिन एक नये ढंग की पंचायत पिछले दिनों नवम्बर 2009 सारनाथ में विद्या आश्रम पर बुलाई गई जिसमें 'ज्ञान' को ही मुद्दा बनाया गया। अभी तक कभी 'ज्ञान' पर पंचायत बुलाने की बात नहीं सुनी गई हैं। ज्ञान पर सुनवाई होने का क्या अर्थ हैं?

हमारी सोच यह कहती है कि इसका मतलब यह है कि अगर मनुष्य को 'ज्ञान' से वंचित किया जाय, उसके ज्ञान पर डाका डाला जाये या उसके ज्ञान को कैद किया जाय यानि बाँध दिया जाय या इससे मिलती-जुलती दुर्घटनायें हो तो ज्ञान पंचायतों को बुलाने की आवश्यकता पैदा हो जाती है। मनुष्य एक ज्ञानी जीव है और अपने ज्ञान के बल पर उसे जिविका कमाने का बुनियादी अधिकार है। **उसका यह अधिकार कोई अन्यायी व्यवस्था ही छिन सकती हैं। किसान अपने ज्ञान के बल पर किसानी करता है। कारीगर अपने ज्ञान के बल पर वस्तुयें बनाता हैं। इन्हें इनके ज्ञान का इस्तेमाल करने से रोकना, इनके ज्ञान का तिरस्कार करना या जायज मूल्य न देना, इन्हें नया ज्ञान हासिल करने से वंचित करना जैसे मुद्दे 'ज्ञान-पंचायत' में चर्चा के विषय बनते हैं।** इतना ही नहीं विश्वविद्यालय में महंगी फीस और प्रवेश को सीमित करने से हमारे युवा, विशेषरूप से गाँवों,कस्बों और शहरों की बस्तियों में रहने वाले करोड़ों युवा ज्ञान से वंचित कर दिये जा रहे हैं, यह भी ज्ञान पंचायत में विचार का अहम् मुद्दा बनता है।

ज्ञान-पंचायत कोई नई बात है ऐसा हम नहीं कर रहे हैं। भक्तिकाल तो ज्ञान-पंचायतों का जमाना ही रहा हैं। जब ज्ञान पर किसी एक ही ज्ञान-धारा का एकाधिकार हो गया था तब कबीर, रैदास, तुकाराम, आदि संतों ने देशभर में ज्ञान-पंचायतें की और ज्ञान-क्षेत्र पर काबिज इजारेदारी को उखाड़ दिया। उन्होंने अनेक ज्ञान-गंगाओं को अविरल बहने का रास्ता बनाया।

वाराणसी की इस ज्ञान पंचायत का मुद्दा क्या था? लोकविद्याधर समाज (यानि किसान, कारीगर अदिवासी और छोटे दुकानदार) के परिवारों के युवा विश्वविद्यालय तक क्यों नहीं पहुँच पा रहे है? उनके अपने पुश्तैनी पेशों के ज्ञान को मूल्य नहीं मिलता और विश्वविद्यालय की दरवाजे उनके लिए बन्द हैं। उनके प्रवेश को रोकने के लिए दीवारों पर दीवारें खड़ी की जा रही हैं। वे क्या करें? इस 'ज्ञान' पंचायत में किसान, कारीगर, सामाजिक कार्यकर्त्ता, वैज्ञानिक, इंजीनियर, पत्रकार और महिलाओं ने शिरकत की। सभी ने अपने विचार रखे। **ज्ञान हासिल करने में आज के विश्वविद्यालय ने कितनी तरह की दीवारें खड़ी की हैं इस पर पंचायत में जो विचार आये हैं वे चौकाने वाले हैं। हम इन्हें नीचे दे रहे हैं, आप स्वयं सोचे।**

1. जब तक विश्वविद्यालय की चहार दीवारी नहीं टूटेगी तब तक लोगों को मूर्ख और अज्ञानी कहने की प्रवृति नहीं जायेगी।
2. जिसतरह धर्म के ठेकेदार होते हैं वैसे ही ज्ञान के भी ठेकेदार होते हैं। विश्वविद्यालय की दीवारों को टूटने का अर्थ है ज्ञान के ठेकेदारों की इजारेदारी टूटना।
3. विश्वविद्यालय ज्ञान को कई दीवारों के अदंर चाक चौबंद रखते हैं। ये दीवारें भौगोलिक दूरी की हैं, धन की हैं, ज्ञान के प्रकार की हैं, मूल्यों की हैं, विश्वदृष्टिकोण की हैं। आम आदमी इन दीवारों को लाँघ नही पाता।
4. विश्वविद्यालय ने सार्वजनिक जीवन में वार्ता के ऐसे तरीके लाये हैं कि आम आदमी खुद अपने विचारों को ढंग से अभिव्यक्त नहीं कर पाता। दीवारों के टूटने का अर्थ है अभिव्यक्ति के ऐसे प्रकारों को स्थापित करना जिसमें हर आदमी भागीदारी हो सके।
5. विश्वविद्यालय की दीवार शिक्षित और ज्ञानी को इस तरह अलग करती है कि समाज में स्थित ज्ञान को, लोकविद्या को सम्मान ही नहीं मिल पाता। इसलिये इन दीवारों को टूटना चाहिये।
6. ज्ञान विश्वविद्यालय की दीवारों में कैद है और जिसके पास धन है वहीं इसे खरीद सकता है। बुनकरी में नक्शे व डिजाइन की कला निः शुल्क सिखाई जाती हैं। यह शिक्षा का एक ऐसा नमूना पेश करती है जिसमें बराबरी के मूल्य का पोषण होता हैं।
7. विश्वविद्यालय का सामान्य जनता/समाज से उल्टा रिश्ता है। दीवारों का टूटना यानि इस रिश्ते को सकारात्मक बनाना है।
8. विश्वविद्यालय पर अब तक कई दोष मढ़े गये हैं लेकिन इस ज्ञान-पंचायत में विश्वविद्यालयीय-ज्ञान पर ही सवाल खड़ा किया हैं।
9. विश्वविद्यालय की दीवारे टूटे इस बहस में विश्वविद्यालय के अंदर के लोगों को भी शामिल किया जाना चाहिये।
10. विश्वविद्यालय स्वयं एक दीवार ही है जो समाज को बाँट रही हैं। अगर ऐसा है तो इस दीवार को टूटना ही होगा।
11. विश्वविद्यालय को समाज के साथ जनता के साथ, सकारात्मक और गतिशील रिश्ता बनाना होगा। इस सम्बन्ध को बनाने की क्रिया ही दीवार के टूटने में मदद करेगी।
12. विश्वविद्यालय को गढ़ने में लोगों की भागीदारी होगी तभी ये विश्वविद्यालय लोकहितकारी हो सकेंगे।
13. शिक्षा का महंगा होता जाना विश्वविद्यालय की दीवारों को और ऊँचा ही करता जा रहा है। शिक्षा व ज्ञान में गैर-बराबरी को खत्म करने के लिये इन दीवारों का धराशायी होना जरूरी है।
14. विश्वविद्यालय में पढ़े छात्र बड़ी और बहुराष्ट्रिय कम्पनियों के पुर्जे ही बन पाते हैं। आज कारखाने की दीवारें और विश्वविद्यालय की दीवारें एक हो गई हैं। इन दीवारों का हटाना जरूरी है।
15. लोकविद्याधर समाज को संगठित होकर ज्ञान के क्षेत्र में पहल लेनी होगी वरना यह गैर-बराबरी का स्त्रोत बना रहेगा।
16. ज्ञान-पंचायत को आगे बढ़कर ज्ञान की दुनिया में पहल लेकर ज्ञान पंचायतों का सिलसिला शुरू करना चाहिये।

•

शिक्षा का अधिकार : लोकविद्या दृष्टिकोण से

डॉ. बी. कृष्णराजुलु

'बच्चों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून' 1 अप्रैल, 2010 से लागू हो गया। यह कानून सरकार को 6-14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था देने के लिए बाध्य करता है। यह शिक्षा की व्यवस्था उन सभी स्कूलों में की जाएगी जिसका मालिकाना अथवा नियंत्रण सरकार के हाथ में है या किसी स्थानीय प्राधिकरण के हाथ में है या उन स्कूलों में जो सरकार से या किसी स्थानीय प्राधिकरण द्वारा वित्त पोषित है और उन सभी स्कूलों में जो निजी हाथों में हैं। पहली से आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई को यह कानून प्रारम्भिक शिक्षा के दर्जे में रखता है। यह कानून सरकार के लिए यह अनिवार्यता पैदा करता है कि धर्म, लिंग, जाति, पंथ तथा आर्थिक स्तर को लेकर भेदभाव किए बगैर 6-14 साल के हर बच्चे के प्रवेश, स्कूल में उपस्थिति और प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने की व्यवस्थाएं पक्की करे। सरकार के लिए यह भी अनिवार्य किया गया है कि वह एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का ढांचा तैयार करे और शिक्षकों के प्रशिक्षण के मानक विकसित करे व उन्हें लागू करे।

पाठ्यक्रम बच्चे के सर्वांगीण विकास पर ध्यान रखेगा, उसके ज्ञान, क्षमता, प्रतिभा, शारीरिक और मानसिक क्षमताएं इन सभी का विकास करेगा। खोजी कार्यों और वास्तविक गतिविधियों व अभ्यास के जरिए सीखने पर जोर दिया जाएगा। शिक्षकों की न्यूनतम अर्हता केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित शैक्षणिक प्राधिकरण द्वारा तय की जाएगी। इस कानून में ऐसे कई अनुच्छेद हैं जो प्रारम्भिक शिक्षा के व्यवसायीकरण को रोकने की दृष्टि से बनाए गए हैं। इस कानून में प्रारम्भिक शिक्षा की जरूरतों और व्यवस्थाओं तथा उन्हें बनाने, चलाने और उनकी देखरेख में केन्द्र और राज्य सरकारों की भूमिकाओं का विस्तार और बारीकी के साथ वर्णन किया गया है।

लोकविद्या दृष्टि से इस कानून की कमियां

1. कानून यह मानकर चलता है कि 6 साल का बच्चा अशिक्षित है क्योंकि वह स्कूल नहीं गया है। ज्यादातर बच्चे 6 साल की उम्र तक घर पर ही रहते हैं और अपने माता-पिता, भाई-बहन व सामाजिक बिरादरी के और लोगों से जिनके साथ वे बड़े होते हैं, कुछ-न-कुछ हुनर या जानकारी सीखते हैं—जैसे सम्प्रेषण, संचार, सफाई या खान-पान के बारे में। अपने माता-पिता के काम को देखकर या उनके साथ काम करके अपने जीवन यापन के हुनर के कुछ तत्त्व भी वे सीख सकते हैं। दूसरे शब्दों में जब तक बच्चे 6 साल के होते हैं, उनके पास ज्ञान और प्रारम्भिक हुनर का एक भंडार तैयार होता है।
2. यह कानून स्कूल के अलावा किसी और स्थान पर बच्चे के निःशुल्क शिक्षा के अधिकार को मान्यता नहीं देता। इस अर्थ में यह कानून वास्तव में निःशुल्क और अनिवार्य रूप से स्कूल जाने के अधिकार को आकार देता है। वास्तव में इस कानून के अंतर्गत यह अनिवार्य होगा कि इस आयु वर्ग के सभी बच्चे उनके घर के पास के सरकारी स्कूल में दाखिला लें।
3. पाठ्यक्रम केन्द्र सरकार द्वारा स्थानीय शैक्षणिक संस्थाओं के साथ मिलकर बनाया जाएगा। प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में शायद शुरूआती विज्ञान, गणित, संचार-कौशल और सामाजिक अध्ययन (इतिहास, भूगोल) शामिल होगा। क्या इस पाठ्यक्रम में लोकविद्या क्षमता विकास भी, जो बच्चे के अंकुरित हो रहे ज्ञान के आधार को आगे बढ़ाएगा? अगर नहीं, तो बच्चा अपने को एक परकीय शैक्षणिक वातावरण में पाएगा जहां जो उसके पास है वही दोबारा दूसरे ढंग से सीखना पड़े। गणित, विज्ञान या संचार-दक्षताओं को सिखाने का तरीका भी बच्चे के लिए दूरस्थ और परकीय हो, इसी की संभावना ज्यादा है। इससे बच्चे में स्वतःस्फूर्त लोकविद्या क्षमताओं के विकास पर विपरीत असर पड़ेगा और आधुनिक ज्ञान की व्यवस्थाओं और तरीकों के वजन में वह दब-सा जाएगा।
4. इस कानून के अंतर्गत यह आवश्यक है कि स्कूल केवल उन्हें ही अध्यापन के लिए रखे, जिनकी योग्यता मानक के अनुरूप हो। यानि मूल डिग्री के साथ-साथ उनके पास किसी विश्वविद्यालय या उच्च शिक्षा संस्थान द्वारा दी गई शिक्षा के क्षेत्र की डिग्री या डिप्लोमा भी होना चाहिए। ऐसी योग्यता वाले शिक्षक ही सभी विषयों में पढ़ाने की अर्हता पूरी करते माने जाएंगे। यानि ऐसे ही शिक्षकों से प्राप्त ज्ञान वैध ज्ञान माना जाएगा। फिर लोकविद्या की स्थिति क्या होगी? लोककला, संगीत, नाट्य, हस्तशिल्प, हुनर, इन सबकी स्थिति क्या होगी? इन विषयों में विश्वविद्यालय द्वारा प्रमाणित शिक्षक नहीं मिलते हैं तो क्या इन बच्चों को पढ़ाया ही नहीं जा सकेगा?
5. इस कानून के चलते पूरे देशभर में प्रमाणित प्रारम्भिक शिक्षा में एक तरह की समानता आ जाएगी। इससे यह तो पक्का हो जाएगा कि बड़ी तादाद में गांवों और बस्तियों के बच्चे लोकविद्या से दूर हो जाएंगे जबकि उनका आधुनिक शिक्षा का स्तर इतना बढ़ जाए कि वे आगे की शिक्षा के लिए योग्य जाए जाएं, इसकी संभावना भी नहीं के बराबर रहेगी।
6. कक्षा 8 के बाद मिलने वाला प्रमाण-पत्र क्या प्रमाणित करेगा? क्या यह आठवीं तक स्कूल जाने का सबूत होगा या बच्चे को कुछ सिखाया गया है, इसका भी प्रमाण होगा? क्या समाज उन्हें शिक्षित व्यक्तियों की मान्यता देगा?

क्या किया जाना चाहिए?

हालांकि यह कानून बन चुका है, कई पहलू ऐसे हैं जिनमें कुछ किया जा सकता है। पाठ्यक्रम निर्माण, शैक्षणिक समय-सारिणी और शिक्षकों की नियुक्ति, ऐसे पक्ष हैं, जिनमें स्थानीय दखल की जगह है और यह दखल ली जानी चाहिए।

1. चूंकि ये विद्यालय पड़ोसी विद्यालय माने गए हैं, इसलिए वहां का वतावरण घर और बिरादरी के जिस वातावरण से बच्चा परिचित था उसी का एक विकसित रूप होना चाहिए। यानि विद्यालय में ऐसे वातावरण के निर्माण में स्थानीय समाज की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। स्कूल बनाने, उसे चलाने, शिक्षकों की नियुक्ति और समय-सारिणी बनाने में स्थानीय समाज को दखल लेनी चाहिए।
2. पाठ्यक्रम द्वारा बच्चे में पहले से अंकुरित हो रहे विद्या के रूप का संज्ञान लिया जाना चाहिए। इस विद्या के क्रमिक विकास के साथ ही विज्ञान, गणित और संप्रेषण के हुनर सिखाए जाने चाहिए। आधुनिक ज्ञान और लोकविद्या के बीच समय का बंटवारा तय करने में स्थानीय समाज की बड़ी भूमिका होनी चाहिए।
3. नए ज्ञान-विज्ञान को सिखाने के लिए शिक्षक स्थानीय समाज के उन व्यक्तियों में से होने चाहिए, जो डिग्री और डिप्लोमा के मानक पूरे करते हैं। लोकविद्या के स्थानीय विशेषज्ञों को उन विद्याओं को सिखाने के लिए बुलाया जाना चाहिए।
4. प्रारम्भिक शिक्षा के इस चरण के बाद मिलने वाले प्रमाण-पत्र 8 साल तक प्राप्त की गई शिक्षा को प्रतिबिम्बित करें, यह स्थिति होनी चाहिए। बच्चों की क्षमताओं के मूल्यांकन में तीन तरह के लोग होने चाहिए—विज्ञान के विशेषज्ञ, लोकविद्या के विशेषज्ञ और वे व्यक्ति जो अपने सार्वजनिक जीवन में स्थान के चलते स्थानीय समाज का सम्मान पाते हैं।

अंत में

इन सब बातों को करने के लिए और उन्हें अमली जामा पहनाने के लिए गांवों और बस्तियों में शिक्षा पंचायतें आयोजित की जानी चाहिए।

•

शिक्षा : क्या अच्छा, क्या बुरा

शिक्षित होना अच्छा माना जाता है। यह सवाल नहीं पूछा जाता कि शिक्षित होना क्यों अच्छा है? हालांकि आधुनिक शिक्षा में अच्छा क्या है, यह बता पाना काफी मुश्किल है। क्या देश-दुनिया के बारे में ज्यादा जानकारी होना अच्छी बात है, क्या अपना इतिहास जानना अच्छी बात है, क्या एटम बम बनाने की तकनीक जानना अच्छी बात है, क्या औद्योगिक प्रबंध और मार्केटिंग के गुर सीखना अच्छी बात है? इन सवालों की अंतहीन फेहरिस्त बनाई जा सकती है। अगर यह सब सीखने और जानने का यही नतीजा निकलना है कि एक मोटी तनख्वाह कमाई जा सके तो इसमें अच्छा क्या है? अगर मोटी तनख्वाह की चाहत और संभावना दोनों ही शिक्षा के बल पर बनती है तो इसमें अच्छा क्या है! यह तो आम समझ की बात है कि थोड़े-से लोग बहुत पैसे कमाएं यह तभी संभव होता है जब बहुत से लोग गरीबी में रहते हैं। कारपोरेट दुनिया, अंतर्राष्ट्रीय बाजार, अरबो-खरबों का लेन-देन, बड़े-बड़े महानगर और उनकी अट्टालिकाएं, राजधानियों का सत्ता का ढांचा सभी कुछ यदि शिक्षा के आधार पर खड़ा है तो इस शिक्षा में अच्छा क्या है? ऐसा नहीं है कि नैतिकता का पाठ पढ़ाने से बात बदल जाएगी। स्कूलों में ये पाठ पढ़ाए भी जाते हैं। शिक्षित लोगों को कोई अनैतिक पाठ भी नहीं पढ़ाए जाते, जिसके चलते विपरीत नतीजे हों। तो आखिर बात क्या है? आधुनिक शिक्षा के इस विरोधाभास को कैसे समझा जाए कि शिक्षा के नतीजे तो अच्छे नहीं होते लेकन शिक्षा को सब अच्छा मानते हैं।

शिक्षा को सब अच्छा इसलिए मानते हैं क्योंकि उसका आर्थिक मूल्य दिखाई देता है। कहें पढ़-लिख जाएगा तो बनी-मजदूरी से बच जाएगा। ज्यादा पढ़ जाएगा तो बड़ी कमाई भी कर लेगा। बस, इतना ही! इस शिक्षा से व्यक्तिगत लाभ तो कुछ हद तक हासिल होता है लेकिन सामाजिक लाभ कतई नहीं मिलता। नैतिक मूल्य की कहीं कोई बात नहीं। पढ़ जाएगा तो सच बोलेगा, चोरी-छिनैती नहीं करेगा, दूसरों का सम्मान करेगा यह सब कुछ नहीं। उल्टे ज्यादा झूठ बोलेगा, दूसरे से प्रतिस्पर्धा में सारे गलत तरीके अपनाएगा, मां-बाप और बड़ों का सम्मान नहीं करेगा, हाथ के काम को ओछा समझेगा और ध्यान दिया जाय कि यह सब उस आर्थिक मूल्य से जुड़ा हुआ है जिसे एक शिक्षित व्यक्ति हासिल कर पाता है। यानि आधुनिक शिक्षा के चलते आर्थिक मूल्य हासिल करना और अनैतिक व्यवहार करना ये एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसीलिए सब मानते हैं कि शिक्षा अच्छी है लेकिन नतीजे अच्छे नहीं होते।

•

हर गांव में एक संचार विद्यालय (मीडिया स्कूल) हो

इस संचार विद्यालय को मीडिया स्कूल भी कहा जा सकता है। ग्रामीण नौजवानों की एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति यह करेगा।

सूचना क्रांति ने दुनिया में जो बदलाव लाने शुरू कर दिए हैं, उनमें ग्रामीण नौजवान अपनी जगह बना सके, इसके रास्ते यह संचार विद्यालय उनके लिए खोलेगा। यही वहां पढ़ने और पढ़ाने का प्रेरणास्रोत होगा। यह विद्यालय किशोरों और नौजवानों की स्वाभाविक क्षमताएं यों संगठित करेगा और उन नई क्षमताओं का उनमें विकास करेगा जिनके बल पर वे सूचना युग के काबिल नागरिक बनेंगे।

कम्प्यूटर, इंटरनेट, संगीत, कला, मोबाइल, टी.वी., सिनेमा, डिजाइन, छोटे-छोटे बाजारों में और छोटे-छोटे उद्यमों में प्रबंध से जुड़े हुए कार्यों, तकनीक और विचार में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। इस दुनिया में यदि बड़ी तादाद में गांवों और बस्तियों के लड़के और लड़कियां प्रवेश करेंगे तो उनकी जिन्दगी आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से जीने लायक बन जाएगी।

गणित और अंग्रेजी के 200 साल के साम्राज्य ने किसानों और दस्तकारों के बच्चों की दुनिया को अंधकार से भर दिया था। हाल के वर्षों में यह अंधकार थोड़ा छंटना शुरू हुआ है, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में गणित और अंग्रेजी का दबदबा बनाकर शासन करने वाले शिक्षा व्यवस्था को उच्च शिक्षा की छाया में यों समेटने में लगे हैं कि अंधकार में पड़े बच्चों का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा ही प्रकाश में आ सके और बाकी सबकी उम्मीदें तोड़कर उन्हें फिर अंधकार में ढकेल दिया जाए, मजदूर से ज्यादा कुछ न बनने दिया जाय। हर गांव में संचार विद्यालय का विचार शिक्षा के वाइसरायों के इन मंसूबों को चुनौती देने का विचार है।

ये वे विद्यालय हैं जहां गांव के बच्चे अपनी बात करना सीखेंगे। चाहे जिससे बात करना सीखेंगे, विद्या की अपनी परंपराओं से परिचित होंगे, संचार और संपर्क की दुनिया में क्या हो रहा है, यह जानेंगे, संगीत, कला, डिजाइन और प्रबंध जैसे क्षेत्रों में पैदा हो रहे नए-नए विचारों और अवसरों से परिचित होंगे। यहां उन्हें गणित, अंग्रेजी और साइंस की वह न्यूनतम जानकारी दी जाएगी जो आज के समाज में विचरने के लिए जरूरी है। इन विद्यालयों में छात्रों को समाज में मौजूद दर्शनों से परिचित कराया जाएगा, लोकविद्या और सामान्य जीवन का सम्मान करने की शिक्षा दी जाएगी।

•

शिक्षा की दुनिया एक है

प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा तक शिक्षा की दुनिया एक है। इस दुनिया में बदलाव नीचे से ऊपर तक बदलाव का एक सुसंगत विचार मांगता है। यह संभव नहीं है कि प्राथमिक शिक्षा में लोकोन्मुख बदलाव किए जाएं और उच्च शिक्षा बाजार से जुड़कर पूंजी की दुनिया का एक हिस्सा बना रहे। शिक्षा के अधिकार कानून के तहत 1 से 8 कक्षा तक की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। यह उन लोगों के लिए है जिनके बच्चे उनकी आर्थिक परिस्थितियों के चलते बचपन से ही कमाने के लिए मजबूर हैं या फिर जिनके बच्चे गरीबी के चलते जल्दी ही स्कूल छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। यह बात दोनों को ही लागू होती है कि उनकी जिन्दगी में बच्चों को पढ़ाने के लिए कोई प्रेरणा नहीं है। प्राथमिक शिक्षा के लिए जो बच्चे सरकारी विद्यालयों में जाते हैं, उन सबकी पढ़ाई छठीं से दसवीं के बीच छूटना तय होता है। इन्हें बाजार में जिसे थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना आता है ऐसे मजदूर के रूप में खड़ा होना है और वर्तमान व्यवस्था के लिए अपनी उपयोगिता बढ़ानी है। यानि इन्हें भी पूंजी और बाजार की दुनिया का ही एक हिस्सा बनना है अलबत्ता एक मजदूर के रूप में। उच्च शिक्षा से आए लोगों को उसी दुनिया में मैनेजर, इंजिनियर, प्रोफेसर और डॉक्टर जैसे पदों पर बैठना है। शिक्षा में बदलाव का सवाल पूरी शिक्षा की दुनिया में आमूल बदलाव का सवाल है। और यह बदलाव राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक बदलाव के हिस्से के रूप में ही देखा जा सकता है।

प्राथमिक शिक्षा में सुधार को लेकर तरह-तरह के प्रयोग होते रहते हैं। ये काम अधिकतर गैर-सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) द्वारा किए जाते हैं। गणित की पढ़ाई ठीक से हो, भाषा का अच्छा ज्ञान हो, आसपास के भूगोल व समाज के बारे में जानकारी हो, विषय रटाया न जाए बल्कि समझ पैदा की जाए, दबाव में नहीं बल्कि खेलकूद में बच्चे सीखें, जैसी तमाम बातें की जाती हैं और उसके अनुरूप प्रयोग किए जाते हैं। इससे यह भ्रम पैदा होता है कि प्राथमिक शिक्षा को अच्छा बनाया जा सकता है। एक-दो फीसदी बच्चों को हम जैसा चाहते हैं वैसा पढ़ा लें यह तो हर समाज में होता ही रहता है लेकिन सवाल तो यह है कि अधिकतर बच्चों को अच्छी व प्रभावी शिक्षा कैसे मिले? जिस तरह की उच्च शिक्षा चल रही है उसमें पैसे वाले घरों के बच्चों को तो वह स्कूली शिक्षा मिल जाएगी जिसके बल पर वे इस दुनिया में अपने लिए एक सम्मानजनक जगह बनाने के लिए आगे बढ़ जाएं लेकिन ज्यादातर बच्चे उसी शिक्षा की व्यवस्था में रहेंगे जो उन्हें मजदूर भर बनाती है, जिनके लिए किसी शिक्षा की जरूरत वैसे भी नहीं है। शिक्षा के पूरे क्षेत्र की बुराई, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार व बेनतीजापन का आधार उच्च शिक्षा की वास्तविकता और मूल्यों में है। अगर शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी बदलाव होना है तो सबसे पहले उच्च शिक्षा में बदलाव होना होगा। हालांकि फिलहाल तो धारा उल्टी ही चल रही है, उच्चतम शिक्षा की वर्तमान व्यवस्थाओं को जोर-शोर से मजबूत किया जा रहा है।

•

ज्ञान की दुनिया में बदलाव, शिक्षा और लोकविद्या

शिक्षा में सुधार या परिवर्तन पिछले 20 साल से दुनिया में हो रहे बदलाव के साथ बड़ा नजदीक का संबंध रखता है। इस संबंध के दो स्पष्ट पक्ष हैं। एक आर्थिक और दूसरा ज्ञान से संबंधित। आर्थिक पक्ष अधिक चर्चा में रहता है और उसका सार यह है कि शिक्षा एक तो बहुत महंगी हो गई है और दूसरा, नई बन रही वैश्विक कारपोरेट दुनिया के लिए उपयोगी मानवीय कलपुर्जे तैयार करना यही शिक्षा का काम बन गया है। लेकिन यहां हम ज्ञान से संबंधित बातों का थोड़ा खुलासा करना चाहते हैं।

सूचना क्रांति के बाद से ज्ञान की दुनिया में एक भूचाल आ गया है। इंटरनेट की व्यवस्थाओं ने वह स्थिति पैदा कर दी जिसके चलते प्राकृतिक विज्ञान का वर्चस्व टूटता चलता जा रहा है। अब यह स्थिति है कि किसे ज्ञान माना जाय और किसे न माना जाय इसकी कसौटियां प्राकृतिक विज्ञान से बाहर आ गई है, विश्वविद्यालय के भी बाहर आ गई हैं तथा उपयोगिता के खयालों से जुड़ गई हैं। हालांकि अभी यह उपयोगिता बाजार में बेचने की ताकत के अंतर्गत ही देखी जा रही है फिर भी ज्ञान की दुनिया पर प्राकृतिक विज्ञान की जकड़न टूटने से मनुष्य की समझ और गतिविधि के दो बड़े क्षेत्र विज्ञान माने जाए इस दावे के हकदार हो गए हैं। पहला है, संचार, कम्प्यूटर और सूचना का क्षेत्र और दूसरा, लोकविद्या का है। दोनों ही दर्शन और व्यवहार में शिक्षा में अनुकूल बदलाव का दबाव ला रहे हैं।

कम्प्यूटर और संचार की विद्या पढ़ने-पढ़ाने के लिए बड़े-बड़े संस्थान खोले गए हैं। भारत इस क्षेत्र में विश्व में अगुवा नहीं है लेकिन यहां की शिक्षा की व्यवस्थाओं में भी ऐसा परिवर्तन चारों ओर दिखता है। इस क्षेत्र में उच्चतम शिक्षा के लिए खोले गए आइ.आइ.आइ.टी. (इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्फर्मेशन टेक्नोलाजी) से लेकर छोटे-छोटे शहरों में कम्प्यूटर शिक्षा संस्थानों तक हर स्तर पर कम्प्यूटर शिक्षा की व्यवस्थाएं दिखाई देती हैं। आइ.आइ.टी. और सभी इंजीनियरिंग कॉलेजों में आकर्षण के वरीयता क्रम में कम्प्यूटर सबसे ऊपर है। इस सबके सामने प्राकृतिक विज्ञान और मेकेनिकल इंजीनियरिंग के विभाग फीके नजर आते हैं।

लोकविद्या को ज्ञान का दर्जा मिलना शुरू तो हुआ है लेकिन शिक्षा के साथ इसके जुड़ने की प्रक्रिया कमजोर है। इसका प्रमुख कारण यह मालूम पड़ता है कि लोकविद्या का स्वामी समाज मुख्य रूप से किसान, कारीगर और आदिवासी इतना कमजोर है कि वह फिलहाल ऐसा कोई दबाव बनाने की स्थिति में नहीं है। दूसरी बात यह है कि लोकविद्या स्वभावतः समाज में बसती है और उस अर्थ में संगठित नहीं है, जिस अर्थ में प्राकृतिक विज्ञान और कम्प्यूटर की विद्याएं संगठित हैं। इससे दो बातें सामने आती हैं। पहली, यह कि लोकविद्याधर समाज ताकतवर हुए बगैर लोकविद्या को सही ढंग से शिक्षा में शामिल शायद ही किया जा सके। दूसरी बात यह है कि यदि लोकविद्या का लंबा-चौड़ा दस्तावेजीकरण कर दिया जाय और उसे अन्य विद्याओं की तरह संगठित कर दिया जाय तो क्या उसे शिक्षा में शामिल करना सुगम हो जाएगा? लेकिन अगर ऐसा हो भी गया तो लोकविद्या की आत्मा ही नष्ट हो जाएगी, वह लोकविद्या रह ही नहीं जाएगी। क्योंकि लोकविद्या के लिए उसका लोकस्थ होना अनिवार्य है। तो फिर रास्ता क्या है? इस ज्ञान की विधा की मांग यह है कि शिक्षा का स्वरूप ही बदल दिया जाय। शिक्षा कैसी हो इस पर सोचने का सबसे बड़ा प्रस्थान बिन्दु यही है। किसने कहा है कि शिक्षा का अर्थ पढ़ना-लिखना है? गांधीजी तो ऐसा नहीं कहते थे। कबीर और रैदास ने भी ऐसा नहीं कहा है। मसीही ज्ञान की किसी भी पुस्तक में शायद यह न मिले। फिर यह आया कहां से? साम्राज्यवाद की जरूरतों के मुताबिक दुनियाभर के संसाधनों पर कब्जा करने और एक दैत्यकारी वैश्विक बाजार को बनाने और उस पर नियंत्रण रखने की जरूरतों ने ज्ञान को यों संगठित कर दिया कि उसका मनुष्य के हित में इस्तेमाल ही असंभव हो गया। ज्ञान के इसी संगठन का विस्तृत आधार शिक्षा की आधुनिक व्यवस्थाओं में है। लोकविद्या का शिक्षा से जोड़ा जाना समय की मांग है। और, इसके अनुरूप शिक्षा के विचार, दर्शन और व्यवस्था में परिवर्तन लाना जरूरी है। शायद किसी भव्य कल्पना की बराबरी का महत्त्व वे सब छोटे-छोटे प्रयोग रखते हैं जो इस दिशा में किए जा रहे हैं।

•

भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन- 2

अपने मई अंक के संपादकीय में हमने लिखा था कि भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन में सकारात्मक तत्त्वयह है कि समाज और सरकार की बराबर की भागीदारी की एक उच्चतम स्तर की समिति बन गई। और, यह किसी विशेष तबके की किसी मांग को हल करने के लिए नहीं, बल्कि भ्रष्टाचार रूपी राक्षस से निपटने के रास्ते खोजने के लिए। हमने ये कहा था कि इस घटना में एक बड़े परिवर्तन का बीज छिपा है। वह यह कि समाज के प्रतिनिधि केवल संसदीय चुनावों से ही नहीं आते बल्कि समाज में चल रही और प्रक्रियाओं से भी प्रतिष्ठित होते हैं। हमने यह भी सुझाया था कि ऐसी ही संयुक्त समितियों की जरूरत विस्थापन, शिक्षा, रोजगार, सांप्रदायिकता व राष्ट्रीय संसाधनों की उपयोगिता जैसे सभी विषयों पर हैं, जो दशकों से जन-आंदोलनों के मुद्दे रहे हैं। हम इस पर फिर से जोर देकर कहना चाहते हैं कि ऐसी समितियां वह प्रक्रियाएं शुरू कर सकती हैं, जिससे समाज और राजनीति के बीच संतुलन बने और राजनीति में सामाजिक सत्ता के विलय होने की प्रक्रिया रुके। जब राजनीति का अर्थ ही निरंकुश सत्ता हो चला हो तब इस बात के महत्त्व को कैसे नकारा जा सकता है?

संयुक्त समिति की बैठकों का दौर खत्म हो चुका है। सर्वसम्मति का लोकपाल विधेयक का मसौदा नहीं बन पाया। असहमति के बिन्दु सार्वजनिक हो चुके हैं। प्रधानमंत्री लोकपाल के दायरे में न आए यह सरकार की जिद्द है। यानि प्रधानमंत्री भ्रष्ट है या नहीं इसकी जांच तक नहीं की जा सकती। अन्ना कह रहे हैं कि देश की जनता जो बिन्दु लोकपाल विधेयक में शामिल कराना चाहती है वे शामिल होने ही चाहिए। अगर सरकार पीछे हटती है तो आंदोलन जारी रहेगा।

दूसरी तरफ संयुक्त समिति में सरकारी सदस्यों में एक केन्द्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य कपिल सिब्बल ने ऐलानिया कहा है कि समाज और सरकार के सहयोग का ऐसा प्रयोग दोबारा नहीं करना चाहिए। यही सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। सरकार समाज के किन्हीं भी गैर-राजनीतिक प्रतिनिधियों के साथ बराबरी में बैठने से भागती है। यही राजनीतिक सत्ता की निरंकुशता है। लोकतंत्र के समर्थकों पर एक बड़ी मांग है, वह यह कि वे लोकतंत्र के उस सिद्धांत और विचार को आकार दें जो राजनैतिक और सामाजिक सत्ता के बीच संतुलन रखता हो। अगर लोकतंत्रका अर्थ संसद और राजनीतिक निरंकुशता ही बनता हो तो अच्छा होगा कि हम स्वराज की बात करें और 21वीं सदी में स्वराज का क्या अर्थ होता है, इसकी खोज करें।

•

भ्रष्टाचार दूर होगा या व्यवस्थित होगा?

अगर भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन में सामान्य नागरिकों, किसानों, मजदूरों, छोटे-छोटे दुकानदारों, छोटी-मोटी नौकरी करने वालों, कारीगरों, आदिवासियों के कष्ट और शोषण के प्रति संवेदना नहीं नजर आती है तो हम यह मानने को बाध्य होंगे कि यह लूट के बंटवारे को व्यवस्थित करने का आंदोलन है। राजनैतिक सत्ता की निरंकुशता और पूंजी के वैश्विक स्वरूप ने आम जनता की लूट का पैमाना बहुत तेजी से बढ़ा दिया है। इस लूट के बंटवारे की पुरानी व्यवस्थाएं चरमरा गई हैं। सौ रुपये की चोरी का बंटवारा करने वालों के पास अचानक दस हजार रुपये आ जाए तो वे आपस में लड़ पड़ेंगे। कुछ ऐसा ही हुआ लगता है। बंटवारे की व्यवस्थाएं टूट जाने से निरंकुश व्यक्तियों और समूहों का उदय हो गया और खुलेआम विधिमान्य तरीकों का हनन हुआ व और हिस्सेदार वंचित हुए। जब तक भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन सामान्य आदमी, किसान, कारीगर और मजदूर की लूट की चर्चा नहीं छेड़ता है, तब तक इस बात से मुंह मोड़ना मुश्किल होगा कि यह आंदोलन केवल लूट के बंटवारे की एक नई व्यवस्था बनाने का ही साधन बन जाएगा।

•

लोकविद्या पंचायत के पाठकों से

- **वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 50/-**
- **वेतन पाने वालों से कम से कम रु. 100/- प्रति वर्ष अपेक्षित है।**
- **आजीवन सदस्यता रु. 1000/-**
- **अपने क्षेत्र के लोकविद्याधरों की समस्यायें, संघर्ष एवं संगठनों के बारे में अवश्य लिख भेजें।**

सम्पर्क फोन

+91-9369124998, +91-9838944822

किसान यूनियन का आगे का रास्ता

यह सच है कि चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत की मृत्यु के बाद भारतीय किसान यूनियन के नेतृत्व का स्थान खाली-सा हो गया है। चौधरी का व्यक्तित्व मसीही रहा और जिन 25 वर्षों तक वे भारतीय किसान यूनियन के नेता रहे, उनके नेतृत्व पर कोई सवाल कभी नहीं उठा। अब उनके बड़े बेटे नरेश भारतीय किसान यूनियन के अध्यक्ष हैं, ऐसी घोषणा हरिद्वार की सालाना पंचायत में जून के मध्य में हुई। घोषणा क्या हुई, पोस्टर पहले से लगे थे और पंचायत इसी मान्यता पर हुई कि नरेश अध्यक्ष बन चुके हैं। उन्होंने अपने भाषण में यह साफ भी कह दिया कि वे पहले कभी यूनियन की गतिविधियों में शामिल नहीं हुए हैं और यह कि धरना-प्रदर्शन का रास्ता उनकी पसंद का रास्ता नहीं है। वैसे भी अब तक जो यूनियन अपने नेता के नामों से जाना जाता था उसका अध्यक्ष अब यूनियन के नाम से जाना जाएगा।

भारतीय किसान यूनियन किसानों का सबसे बड़ा संगठन है और किसानों पर ढाए जा रहे जुल्मों का मुकाबला ही उसकी सबसे बड़ी चुनौती है। वर्तमान दौर में गांवों और किसानों को नए सिरे से उजाड़कर महानगरों पर केन्द्रित एक नई दुनिया बनाई जा रही है। जमीनों पर कब्जा करके, ग्रामीण बाजारों में घुसकर और बैंकों का विस्तार करके एक ऐसा नाया जाल बनाया जा रहा है जिसे अभी ही काटा न गया तो लंबे समय तक किसान उसमें फंसकर छटपटाता रहेगा और गुलामी की जिन्दगी जिएगा। चारों ओर किसानों के संघर्ष चल रहे हैं। लेकिन इन सबको जोड़कर जब तक एक बड़े आंदोलन का रूप नहीं दिया जाता तब तक गुलामी और उत्पीड़न का जाल काटना संभव नहीं होगा। देशभर का कारीगर समुदाय और छोटा-छोटा धंधा करने वाले सभी एक महा उजाड़ के कगार पर खड़े हैं। छिटपुट संघर्ष करते रहते हैं। कभी कुछ कामयाबी मिलती है तो कभी मार खानी पड़ती है। किसान नेतृत्व को इन व्यापक परिस्थितियों को अपने घेरे में लेना जरूरी है। आशा है कि भारतीय किसान यूनियन का नया नेतृत्व इन सभी वर्गों के कष्टों के प्रति सचेत रहेगा और सबको अपने साथ चलने की नीति बनाएगा।

किसान का सवाल ही देश का सवाल है। एक तरफ हैं किसान, जमीन और गांव; और दूसरी ओर हैं महानगर तथा बड़े-बड़े बाजार। किसान उजड़ेगा, जमीन छिनेगी और गांव उजड़ेंगे तो बनेंगे महानगर और बड़े-बड़े बाजार। और यदि किसान खुशहाल होंगे तो गांव आबाद होंगे। कारीगर और छोटा-छोटा धंधा करने वाले बिना किसी की गुलामी किए या दबे और बिना उजाड़े जाने के भय के अपने काम कर सकेंगे, जीविका चला सकेंगे; पर्यावरण शुद्ध रहेगा और भाईचारे व शांति का वातावरण बनेगा। लेकिन इस रास्ते में बाधा है महानगर और बड़े बाजार और उनमें किया जाने वाला पूंजी निवेश। यह बात नहीं है कि किसान यूनियन का नेतृत्व यह सब समझता नहीं है। लेकिन विभिन्न विवशताओं के चलते बिजली, पानी, खाद, कर्ज, दाम और अब जमीन बचाने के संघर्ष स्थानीय ही रह जाते हैं। नेतृत्व को इन स्थानीय और क्षेत्रीय विवशताओं के दायरों को तोड़कर व्यापक क्रांतिकारी एकता का रास्ता अपनाना होगा। देश और समाज की जो हालत बना दी गई है वह खुलेआम एक क्रांति की मांग कर रही है। भारतीय किसान यूनियन के नेतृत्व को खरा उतरना ही होगा। यह उनकी जिम्मेदारी है। या तो चौधरी महेन्द्र सिंह टिकैत द्वारा शुरू किया गया किसान आंदोलन एक निश्चित कदम आगे बढ़ाएगा या फिर धीरे-धीरे होने वाले बिखराव का इंतजार करेगा।

•

लोकविद्या की समाजदृष्टि

1. **सभी को अपनी विद्या के बल पर जीवन चलाने का मौलिक अधिकार हो।**
2. **कृषि उत्पाद को जायज़ दाम हो।**
3. **राष्ट्रीय संसाधनों का गाँव और शहर में बराबर का बँटवारा हो।**
4. **घर-घर में उद्योग हो।**
5. **स्थानीय बाजार को संरक्षण हो।**
6. **अधिकतम और न्यूनतम आय में 5:1 से अधिक का अनुपात न हो।**
8. **गाँव-गाँव में मीडिया स्कूल हो।**
9. **उच्च शिक्षा के दरवाजे सबके लिये खुले हों।**
10. **लोकविद्या को विश्वविद्यालय के ज्ञान के बराबर का दर्जा हो।**

पश्चिमी देशों ने शोषण की कला को विज्ञान का रूप दिया है

शिक्षा-परिषद् में गांधीजी के भाषण के कुछ अंश (22 अक्तूबर, 1937, वर्धा)

मैंने खूब सोच-समझकर यह राय कायम की है कि प्राथमिक शिक्षा की यह मौजूदा प्रणाली न केवल धन और समय का अपव्यय करने वाली है, बल्कि नुकसानदेह भी है। अधिकांश लड़के अपने मां-बाप के तथा अपने खानदानी पेशे-धंधे के काम के नहीं रह जाते। वे बुरी-बुरी आदतें सीख लेते हैं, शहरी तौर-तरीकों के रंग में रंग जाते हैं और थोड़ी-सी ऊपरी बातों की जानकारी ही उन्हें हासिल होती है, जिसे और चाहे जो नाम दिया जाए, पर शिक्षा तो हरगिज नहीं कहा जा सकता। इसका इलाज मेरे खयाल में यह है कि उन्हें उद्योग या दस्तकारी की तालीम के जरिए शिक्षा दी जाए। मुझे इस प्रकार की शिक्षा का कुछ व्यक्तिगत अनुभव है। मैंने दक्षिण अफ्रीका में खुद अपने लड़कों को और दूसरे बच्चों को भी, जो अलग-अलग जातियों और धर्मों के थे और जिनमें से कुछ बड़े कुशाग्र बुद्धि, कुछ मंद और कुछ साधारण बुद्धि के थे, टॉल्स्टॉय फार्म में किसी-न-किसी दस्तकारी, जैसे कि बढ़ईगिरी या जूते बनाने के काम के जरिए, इस प्रकार की शिक्षा दी थी। जूते बनाने का काम मैंने कैलेनबैक से सीखा था और उन्होंने एक ट्रेपिस्ट मठ में इस हुनर की शिक्षा प्राप्त की थी।

मैं असल जोर धंधे या उद्यम पर नहीं, बल्कि हाथ-उद्योग द्वारा शिक्षण पर दे रहा हूं—साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान इत्यादि सभी विषयों के शिक्षण पर। शायद इस पर यह आपत्ति उठाई जाए कि मध्यम युग में तो दस्तकारी के अलावा और कोई चीज नहीं सिखाई जाती थी। मगर उस समय पेशे-धंधे की तालीम शैक्षणिक प्रयोजन के लिए नहीं होती थी। इस युग में यह हुआ है कि लोग उन पेशों को, जो उनके घरों में होते थे, भूल गए हैं, पढ़-लिखकर उन्होंने क्लर्की का काम हाथ में ले लिया है और इस तरह वे आज देहात के काम के नहीं रहे हैं। इसका यह नतीजा हुआ है कि किसी भी औसत दर्जे के गांव में हम जाएं, तो वहां अच्छे, निपुण बढ़ई या लोहार का मिलना असंभव हो गया है। दस्तकारियां करीब-करीब लुप्त हो गई हैं, और कताई का उद्योग, जो उपेक्षा की नजर से देखा जा रहा था, लैंकशायर चला गया, जहां कि उसका विकास हुआ। धन्यवाद है अंग्रेजों की अनोखी प्रतिभा को कि ऐसे हुनरों को उन्होंने आज इस हद तक विकसित कर दिया है। यह बात मैं अपने औद्योगीकरण-संबंधी विचारों के बावजूद कहता हूं।

इलाज इसका यह है कि हरएक दस्तकारी की कला और विज्ञान व्यावहारिक शिक्षण द्वारा सिखाया जाए और फिर उस उद्योग द्वारा शिक्षा दी जाए। उदाहरण के लिए, तकली पर की कताई-कला को ही ले लीजिए। इसके प्रशिक्षण के लिए और भी कई तरह की बातों का ज्ञान कराना आवश्यक है—जैसे कपास की अलग-अलग किस्मों का और हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रांतों की तरह-तरह की जमीनों का ज्ञान, दस्तकारी के विनाश के इतिहास और उसके राजनीतिक कारणों का ज्ञान, जिसमें भारत में अंग्रेजी राज्य का इतिहास भी आ जाएगा। इसी तरह गणित इत्यादि कई विषयों की भी शिक्षा आवश्यक होगी।

मैंने सोचा है कि अध्ययन-क्रम सात साल का रखा जाए। जहां तक तकली का संबंध है, इस अवधि में विद्यार्थी बुनाई तक के व्यावहारिक ज्ञान में (जिसमें रंगाई, डिजाइनिंग आदि भी शामिल हैं) निपुण हो जाएंगे। हम जितना कपड़ा पैदा कर सकेंगे, उसके लिए ग्राहक तो तैयार हैं ही।

मैं इसके लिए बहुत उत्सुक हूं कि विद्यार्थियों की दस्तकारी की चीजों से शिक्षा का खर्चा निकल आना चाहिए, क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि हमारे देश के करोड़ों बच्चों को तालीम देने का दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। जब तक सरकारी खजाने से आवश्यक पैसा न मिल जाए, या वाइसराय फौजी खर्च को कम न कर दें, या ऐसा ही कोई कारगर जरिया न निकल आए, तब तक रास्ता देखते हम बैठे नहीं रह सकते। आप लोगों को याद रखना चाहए कि इस प्राथमिक शिक्षा में सफाई, आरोग्य और आहार-शास्त्र के प्रारंभिक सिद्धांतों का समावेश भी हो जाता हैं अपना काम खुद कर लेने तथा घर पर अपने मां-बाप के काम में मदद देने वगैरह की शिक्षा भी इसमें शामिल है। वर्तमान पीढ़ी के लड़कों को न तो सफाई का ज्ञान है, न वे यह जानते हैं कि आत्म-निर्भरता क्या चीज है; और वे शरीर से भी काफी दुर्बल होते हैं। इसलिए उन्हें मैं लाजिमी तौर पर गाने और बाजे के साथ कवायद वगैरह के जरिए शारीरिक व्यायाम की भी तालीम दूंगा।

मुझपर यह दोषारोपण किया जा रहा है कि मैं साहित्यिक शिक्षा के खिलाफ हूं। नहीं, यह बात नहीं है। मैं तो केवल वह तरीका बता रहा हूं जिससे साहित्यिक शिक्षा देनी चाहिए। और मेरे स्वावलंबन के पहलू पर भी हमला किया गया है। यह कहा गया है कि प्राथमिक शिक्षा पर जहां हमें करोड़ों रुपये खर्च करने चाहिए, वहां हम उलटे बच्चों का ही शोषण करने जा रहे हैं। यह आशंका भी व्यक्त की जाती है कि इसमें भारी बरबादी होगी। लेकिन अनुभव ने इस भय को गलत साबित कर दिया है। जहां तक बच्चे पर बोझ डालने या उसका शोषण करने का सवाल है, मैं यह जानना चाहूंगा कि बच्चे को सर्वनाश से बचाना क्या उस पर बोझ डालना है। तकली बच्चों के खेलने के लिए एक काफी अच्छा खिलौना है। चूंकि यह एक उत्पादक खिलौना है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह खिलौने से किसी तरह कम है। आज भी बच्चे किसी हद तक अपने मां-बाप की मदद करते ही हैं। हमारे सेगांव के बच्चे खेती-बाड़ी की बातें मुझसे कहीं ज्यादा जानते हैं, क्योंकि उन्हें अपने मां-बाप के साथ खेतों पर काम करना पड़ता है। जहां बच्चे को इस बात का प्रोत्साहन दिया जाएगा कि वह काते और खेती के काम में अपने मां-बाप की मदद करे, वहां उसे ऐसा भी महसूस कराया जाएगा कि उसका संबंध सिर्फ अपने मां-बाप से ही नहीं, बल्कि अपने गांव ओर देश से भी है और उसे उनकी भी कुछ सेवा करनी चाहिए। यही एकमात्र रास्ता है। मैं मंत्रियों से कहूंगा कि खैरात में शिक्षा देकर तो वे बच्चों को असहाय ही बनाएंगे; लेकिन उनसे अपने पसीने की कमाई से अपनी शिक्षा का खर्च निकलवाकर वे उन्हें बहादुर और आत्म-विश्वासी बनाएंगे।

इस तरह जो विद्यार्थी शिक्षित किए जाएंगे, उन्हें जरूरत पड़ने पर रोजी देने के लिए राज्य बंधा हुआ है। जहां तक अध्यापकों का प्रश्न है, प्रोफेसर शाह ने अनिवार्य सेवा का उपाय सुझाया है। इटली तथा अन्य देशों के उदाहरण देकर उन्होंने इसका महत्त्व बताया है। उनका कहना है कि अगर मुसोलिनी इटली के तरुणों को देश की सेवा में जुटा सकता है, तो हमें हिन्दुस्तान के तरुणों को ऐसी सेवा में क्यों नहीं लगाना चाहिए? हमारे नौजवानों को अपना रोजगार शुरू करने से पहले एक या दो साल के लिए अनिवार्य रूप से अध्यापन का काम करना पड़े, तो उसे गुलामी क्यों कहा जाए। पिछले सत्रह सालों में आजादी के हमारे आंदोलन ने जो सफलता प्राप्त की है, उसमें नौजवानों का योग कुछ कम नहीं है। इसलिए मैं उनसे अपने जीवन का एक साल राष्ट्र-सेवा के लिए अर्पण करने को कह सकता हूं। इस संबंध में कानून बनाने की भी जरूरत हुई, तो वह जबरदस्ती नहीं होगी, क्योंकि हमारे प्रतिनिधियों के बहुमत की रजामंदी के बिना वह कभी मंजूर नहीं हो सकता।

इसलिए मैं आपसे पूछूंगा कि शारीरिक परिश्रम द्वारा दी जाने वाली शिक्षा आपको रुचती है या नहीं? मेरे लिए तो इसे स्वावलंबी बनाना ही इसकी उपयुक्त कसौटी होगी। सात साल के अंत में बालकों को ऐसा तो हो ही जाना चाहिए कि अपनी शिक्षा का खर्च वे खुद उठा सकें और परिवार के कमाऊ सदस्य बन सकें।

कॉलेज की शिक्षा मुख्यतः शहरों की चीज है। यह तो मैं नहीं कहूंगा कि यह भी प्राथमिक शिक्षा की तरह बिल्कुल असफल रही है, लेकिन इसका जो परिणाम हमारे सामने है, वह काफी निराशाजनक है। अन्यथा कोई ग्रेजुएट भला बेकार क्यों रहे?

भाषण के अंत में गांधीजी ने स्वावलंबी प्राथमिक शिक्षा की अपनी योजना के मूलभूत तत्त्व पर उपस्थित जनों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा :

हमारे यहां सांप्रदायिक झगड़े होते रहते हैं, लेकिन यह कोई हमारी ही खासियत नहीं है। इंग्लैण्ड में भी ऐसी ही लड़ाइयां हो चुकी हैं और आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद सारे संसार का शत्रु हो रहा है। हमें तो उनको अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता और अपने देश की सच्ची प्रतिभा का प्रतिनिधि बनाना है; और यह उन्हें स्वावलंबी प्राथमिक शिक्षा देने से ही हो सकता है। **यूरोप का उदाहरण हमारे लिए कोई उदाहरण नहीं है। हमसे कहा जाता है कि इंग्लैण्ड शिक्षा पर लाखों रुपया खर्च करता है और यही हाल अमेरिका का भी है; लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि यह सब धन शोषण से ही प्राप्त होता है। उन्होंने शोषण की कला को विज्ञान का रूप दे दिया है, जिससे उनके लिए अपने बालकों को ऐसी महंगी शिक्षा देना संभव हो गया है।** लेकिन हम तो शोषण की बात न सोच सकते हैं और न सोचेंगे ही। इसलिए हमारे पास शिक्षा की इस योजना के सिवा, जिसका आधार अहिंसा पर है, और कोई मार्ग ही नहीं है।

उन्होंने कहा कि तकली एकमात्र साधन नहीं है, लेकिन वही एकमात्र ऐसी चीज है जिसे सार्वत्रिक बनाया जा सकता है। और भी चीजें हैं, जैसे कागज बनाना, ताड़ का गुड़ बनाना आदि। यह पता लगाना मंत्रियों का काम है कि किस स्कूल के लिए कौन-सी दस्तकारी सर्वोत्तम रहेगी। जो लोग मशीनों के पक्षपाती हैं, उन्हें मैं चेतावनी देना चाहता हूं कि मशीन पर बहुत ज्यादा जोर देने से इस बात का खतरा है कि मनुष्य भी मशीन बन जाएं। जो लोग मशीन-युग में रहना चाहते हैं उनके लिए मेरी योजना बेकार है, लेकिन मैं उन्हें यह भी बता देना चाहता हूं कि मशीनों के जरिए गांव वालों को जीवित रख सकना असंभव होगा। जिस देश में 30 करोड़ जिन्दा मशीनें हैं वहां नई मुर्दा मशीनें लाने का विचार व्यर्थ है। अगर हमारे अपने लोग ही ईमानदारी से काम करें तो इन स्कूलों से गुलाम नहीं बल्कि कुशल कारीगर तैयार होकर बाहर आएंगे। बच्चों से जो भी श्रम कराया जाए वह निश्चय ही दो पैसे प्रति घंटे के मूल्य का होना चाहिए।

वह राज्य किसी काम का नहीं है जो अपने बेरोजगार लोगों के लिए ठीक व्यवस्था नहीं कर सकता। लेकिन भीख देना बेरोजगारी की समस्या का हल नहीं है। मैं हरएक आदमी को काम दूंगा और अगर पैसा नहीं दे सकता तो खाना दूंगा। ईश्वर ने हमें खाने, पीने और मौज करने के लिए नहीं पैदा किया है, बल्कि पसीना बहाकर अपना भोजन प्राप्त करने के लिए पैदा किया है।

हरिजन, 30.10.1937

मेक्सिम गोर्की के पात्र

विज्ञान, विश्वविद्यालय और प्रशासन

[मेक्सिम गोर्की रूस के बड़े लेखक हो गए। उनकी शिक्षा स्कूल-कॉलेज में नहीं हुई। बचपन से गरीबी और माता-पिता की छाया से दूर तरह-तरह का काम करते हुए उन्होंने समाज में लोगों के बीच रहकर ज्ञान हासिल किया। नीचे 'बेकरी का मालिक' नामक उनकी पुस्तक से कुछ अंश प्रस्तुत है जो साइंस, विश्वविद्यालय और प्रशासन के प्रति आम लोगों का नजरिया उजागर करते हैं। -सं.]

मेरा मालिक एक-एक शब्द आहिस्ता-आहिस्ता टटोलकर बोल रहा था। इस तरह बोलते हुए देखकर सहसा उस अंधे फकीर की आकृति आंखों में फिर छा जाती थी जो अंधेरे में अपनी कंपकंपाती हुई उंगलियों से अपने कासे में पैसा-धेला टटोल रहा हो।

''विज्ञान—अच्छा भई मान लिया ठीक है! तो फिर कोई वैज्ञानिक मुझे आकर बताए कि मिट्टी या कीचड़ से आटा कैसे बनता है। और हां, देखो तो सामने एक भव्य इमारत है—विश्वविद्यालय कहते हैं उसे। वहां के छात्र युवा और दिल्लगीबाज हैं; शराबखानों में मारे-मारे फिरते हैं। पी-पीकर मदमस्त हो जाते हैं और बाजारों में ऊधम मचाते फिरते हैं। सेंट वेर्लाम के बारे में अश्लील व गंदे गाने गाते हैं, पेस्की बाजार में वेश्याओं के यहां जाते हैं और आम तौर पर उनकी जिन्दगी पावन पादरियों की-सी होती है। ...और फिर उसके बाद अचानक कोई डॉक्टर बन जाता है तो कोई जज, कोई शिक्षक बन जाता है तो कोई वकील। क्या तुम मुझसे आशा करते हो कि उन पर विश्वास करूं? क्यों, वह तो शायद मुझसे भी ज्यादा बेईमान हैं। मुझे तो किसी पर भरोसा नहीं।...''

और भ्रष्टाचारियों की तरह होठों पर जबान फेरते हुए उसने अत्यन्त भोंड़े तथा ग्लानिपूर्ण विवरण के साथ बताना शुरू किया कि विद्यार्थी लड़कियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं।

''तुम जब देखो अंतःकरण की और खरेपन की बातें करते रहते हो, मैं तुमसे ज्यादा खरा आदमी हूं; तुम उदण्ड तो जरूर हो। लेकिन खरे या स्पष्टवादी नहीं,जर्रा भर भी नहीं। मुझे तुम्हारी दो-एक हरकतें मालूम हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए तुमने शराबखाने में एक अखबार के प्रतिनिधि से कहा था कि मेरे यहां आटे की नांदों में सड़ांध है, आटे का खमीर उठता है तो सारा फर्श पर बह निकलता है। झींगरों की भरमार है और कारीगरों को आतशक है, हर जगह गंदगी है।'

'तुमसे भी तो कहा था यह सब कुछ मैंने।'

'हूं, कहा तो था। लेकिन यह तो नहीं कहा था कि तुम यह सूचना अखबारों को देना चाहते हो? अच्छा अखबारों में ये सब बातें प्रकाशित हुईं, पुलिस आई, सफाई के महकमे वाले भी आए। मैंने पांच-पांच के बीस नोट उनमें बांट दिए। और देख लो, क्या बिगाड़ लिया किसी ने मेरा?' उसने अपना हाथ चक्र की तरह अपने सीने पर फिराया और बोला : 'देखा तुमने! जो पहले था सो अब भी है—झींगर सब मौजूद हैं, मजे से उछलते-कूदते फिरते हैं। धरे रह गए तुम्हारे अखबार, तुम्हारा विज्ञान, तुम्हारा अंतःकरण! अरे बौड़म, तेरी समझ में यह नहीं आता कि उल्टा तुझ पर ही वार हो जाता। आसपास की सारी पुलिस मेरी जेब में है। सब अफसर मेरे इशारों पर नाचते हैं, तुम्हारी एक नहीं चलेगी। और तुम इसके खिलाफ डटकर खड़ा होना चाहते हो जैसे कोई झींगर कुत्ते के मुकाबले में आ खड़ा हो, हुंह! तुमसे बातें करने से तो मुझे मतली आने लगती है।'

•

किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटा दुकानदार एक हों

क्योंकि

सूचना युग में कम्प्यूटर-इंटरनेट और वैश्वीकरण मिलकर किसानी, कारीगरी, छोटी दुकानदारी को उजाड़ रहे हैं, मज़दूरी को घटा रहे हैं।

कैसे?

1. **इनके श्रम को बाजार में कम दाम देकर**
2. **इनके ज्ञान यानि लोकविद्या को लूटकर**
3. **शिक्षा को महंगी बना कर व इन्हें नये ज्ञान से वंचित कर**

आइए

1. **लोकविद्या के बल पर जीविका के अधिकार का दावा करें।**
2. **सूचना युग में श्रम और ज्ञान की लूट को रोकने के उपाय खोजें।**
3. **बाजार और ज्ञान के क्षेत्र में हो रहे शोषण की समझ और विरोध को आकार दें।**

यूरोपीय विश्वविद्यालय में बदलाव–किस तरफ?

अब दस साल से भी अधिक हो गया यूरोप के विभिन्न देशों की सरकारें उच्च शिक्षा में बदलाव का एक बहुत बड़ा कार्यक्रम चला रही हैं। विश्वविद्यालय की व्यवस्थाएं कारपोरेट जरूरतों को ध्यान में रखकर बदली जा रही हैं। सरकारी अनुदान कम किया जा रहा है, निजी पूंजी का दखल बढ़ाया जा रहा है फीस बढ़ाई गई है, दाखिले की शर्तें कड़ी की गई हैं, समाज विज्ञान और मानविकी के विभाग व्यावसायिकता की शर्तें न पूरी किए जाने के कारण बंद किए जा रहे हैं। कुल मिलाकर विश्व बाजार और सूचना की दुनिया में बड़ी पूंजी के धंधों को जैसी मानवीय सामग्री की जरूरत है वैसा प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों में दिया जाय इसकी व्यवस्थाएं पक्की की जा रही हैं। इसके चलते अब लगभग पांच सालों से यूरोप में एक व्यापक छात्र आंदोलन आकार ले रहा है। जर्मनी, आस्ट्रिया, फ्रांस, हालैण्ड, इंग्लैण्ड, स्पेन, इटली, ग्रीस, क्रोशिया व और भी कई देशों में छात्रों ने नई नीतियों का सड़क पर उतरकर कड़ा विरोध किया है। वहां संघर्ष का एक तरीका यह है कि छात्र विश्वविद्यालय के किसी हाल, विभाग या इमारत पर कब्जा कर लेते हैं और वही अपने शिक्षण-प्रशिक्षण, कला मंच आदि के कार्यक्रम चलाते रहते हैं। अमेरिका के भी कई राज्यों के छात्रों ने संघर्ष का यही रास्ता अपनाया। वे विश्वविद्यालय कैसा होना चाहिए इस पर बड़ी बहस चला रहे हैं। अति संगठित शिक्षा का बड़ा विरोध है और स्वशिक्षा पर जोर है। दूसरा बड़ा विरोध किताबी शिक्षा है। वे कहते हैं कि उन्हें मरा हुआ ज्ञान नहीं चाहिए। वे जीवित ज्ञान के हकदार हैं। यानि कहीं ज्ञान को अंतिम रूप दिया जाय और विश्वविद्यालय की कक्षाओं में उसे लाकर पढ़ाया जाय यह वे नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि ज्ञान की सभी क्रियाओं जैसे उत्पादन, वितरण, संचार, शोध, संवाद, प्रबंध, शिक्षण आदि सभी में वे भागीदार हो। वे व्यवस्थाओं के बनाने और बदलने में भागीदार होना चाहते हैं। किसी बनी-बनाई व्यवस्था में पुर्जा मात्र बनाए जाने का वे विरोध करते हैं।

जो संगठित समूह इस हलचल को दिशा दे रहे हैं, उन्होंने एक नया विचार दिया है। उनका कहना है कि कल के कारखाने के संघर्ष अब स्थानांतरित होकर विश्वविद्यालय में आ गए हैं। इसे वे ज्ञान का पूंजीवाद कहते हैं। उनका मानना है कि छात्र व असंगठित मजदूर इस पूंजीवाद को चुनौती देंगे। स्त्री-वादी आंदोलन और यूरोप के अश्वेत समुदायों के आंदोलन को वे साथी आंदोलन के रूप में देखते हैं। कुछ महीने पहले तुनिसिया में तानाशाही के खिलाफ लोकप्रिय आंदोलन हुआ था। वहीं से अरब देशों की वर्तमान हलचल शुरू हुई है। यूरोपीय छात्र आंदोलन का एक समूह तुनिसिया के छात्रों के साथ संघर्ष में शामिल होने के लिए वहां गया है। भूमध्य सागर के ऊपर यूरोपीय देश हैं और नीचे अरब देश। इन दोनों भू-भागों के आंदोलनों के बीच एका के प्रयास निश्चित ही प्रशंसनीय हैं।

हमारे लिए विचार का विषय यह है कि इन समाजों की व्यवस्था विरोधी और बदलाव की पक्षधर हलचलों से हमारा क्या संबंध बनता है?

विश्वविद्यालय और शिक्षा के जनहितकारी बदलाव की क्रियाओं और विचारों में हमारे पास क्या है, जो उनके लिए भी अर्थपूर्ण हो सकता है और उनके विचारों में ऐसा क्या है जो हमारे लिए अर्थपूर्ण हो सकता है। विश्वविद्यालय के नए रूपों के बारे में वहां तरह-तरह के विचार बहस में आए हैं। उदाहरण के लिए कोपनहागन मुक्त विश्वविद्यालय, एडु-फैक्टरी का स्वायत्त वैश्विक विश्वविद्यालय, आस्ट्रिया में एकता विश्वविद्यालय, पोलेण्ड में उड़ता विश्वविद्यालय, केलिफोर्निया का खुला विश्वविद्यालय, सामाजिक विश्वविद्यालय मेड्रिड, लोकतांत्रिक विश्वविद्यालय वाशिंगटन, गली का विश्वविद्यालय बर्लिन, जनता के लिए जनता का विश्वविद्यालय गावतिमाला (द. अमेरिका), सबका विश्वविद्यालय बार्सिलोना, स्वराज विश्वविद्यालय, विद्रोही विश्वविद्यालय तुनिशया, मायावी विश्वविद्यालय आदि।

इनके बारे में जानकारी से हमें अपनी परिस्थितियों में क्या करना चाहिए यह सोचने में मदद मिलती है। दूसरी तरफ लोकविद्या के संदर्भ में शिक्षा की व्यवस्थाओं में क्या परिवर्तन लाजमी है यह सोचने का मौका उन्हें मिलना चाहिए। अगर यह मौका न पैदा हुआ तो उनकी सारी हलचल एक चाय की प्याली में तूफान से अधिक कुछ नहीं बन पाएगी। अब जब यह प्रकट होने का समय आ गया है कि ज्ञान की दुनिया तो वास्तव में विश्वविद्यालय के बाहर है, लोकविद्या में है तो इससे महरूम रहकर किसी नए विश्वविद्यालय की कल्पना कैसे की जा सकती है?

इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए लोकविद्या जन आंदोलन के पहले अंतर्राष्ट्रीय महाधिवेशन में हमने इन छात्र आंदोलन के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया है।

लोकविद्या जन आंदोलन समिति,
विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी

इंदौर में ज्ञान पंचायत

चित्रा सहस्रबुद्धे

इंदौर में कस्तूरबा ग्राम में 1 से 5 जून के बीच संजीव कीर्तने और अनिल त्रिवेदी के प्रयासों से एक ज्ञान पंचायत आयोजित की गई। इस ज्ञान पंचायत में किसान, कारीगर, सामाजिक कार्यकर्त्ता, छात्र, अध्यापक व लोकविद्या के कार्यकर्त्ताओं ने हिस्सा लिया। इस ज्ञान पंचायत में विश्वविद्यालय के बाहर ज्ञान के भंडार पर विभिन्न कोणों से वार्ता हुई। किसानों, कारीगरों, आदिवासियों और महिलाओं के पास जो ज्ञान है वह विश्वविद्यालयों में नहीं पढ़ाया जाता लेकिन इस ज्ञान के ही बल पर दुनिया में बहुसंख्य लोग अपनी जीविका चलाते हैं। इस ज्ञान को लोकविद्या कहा जाता है। लोकविद्या लोगों के जीवन की शक्ति कैसे बने, उनके जीवन को खुशहाल बनाने का आधार कैसे बने यही इस ज्ञान पंचायत का मुख्य विषय था। पंचायत में स्थानीय बाजारों के पुनर्निर्माण में लोकविद्या और लोकविद्याधर समाजों का खुशहाल भविष्य है, इसकी चर्चा मुख्य रही।

ज्ञान पंचायत की विशेषता यह रही कि पांचों दिन लोकविद्याधर समाज और विश्वविद्यालयीय शिक्षा से जुड़े नौजवान बड़ी संख्या में वार्ता में शामिल रहे। पहले दिन ग्रामीण क्षेत्रों में सिलाई सिखाने व सीखने वाली महिलाओं के साथ लोकविद्या के विचार व सिले हुए कपड़ों के लिए स्थानीय बाजार के निर्माण की पहल कैसे ली जाए इस पर बात हुई। लगभग 35 महिलाओं की भागीदारी में हुई चर्चा में इंदौर में रेडीमेड वस्त्रों की खपत का, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार की स्थिति पर चर्चा हुई। दूसरे दिन कस्तूरबा ग्राम की नर्सिंग छात्राओं के साथ लोकविद्या किस तरह ज्ञान की एक पुख्ता पद्धति व विश्वदृष्टि है, इस पर चर्चा हुई। लगभग 50 छात्राओं के साथ हुई वार्ता में स्वास्थ्य के क्षेत्र में विश्वविद्यालयीय ज्ञान के बाहर कितना समृद्ध ज्ञान लोगों के पास है, इसे उजागर किया गया है। ग्रामीण महिलाओं के पास स्वास्थ्य रक्षा के जो तरीके हैं, क्या नर्सिंग सीख रही छात्राएं उन तरीकों को ज्ञान का दर्जा दे पाती हैं? अगर नहीं तो क्यों? इन सवालों पर वार्ता हुई और चर्चा में यह बात उभर कर आई कि ज्ञान के क्षेत्र में ऊंच-नीच है, जिसके चलते लोकविद्या को ज्ञान का दर्जा नहीं मिल पाता।

तीसरे दिन समाज कार्य कर रहे छात्रों के साथ लोकविद्या विचार पर वार्ता हुई। समाज कार्य की शिक्षा ग्रहण कर रहे ये सभी छात्र छोटे कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों से थे। लगभग 15 छात्र, जो वार्ता में शामिल हुए, उन्होंने इंदौर के आसपास के गांवों में 10 दिन की एक साइकिल यात्रा करके ग्रामीण लोगों के बीच लोकविद्या पर वार्ता का दौर चलाया था। उनका सवाल यह था कि इस बात से ज्यादातर लोग सहमत हो जाते हैं कि लोगों के पास ज्ञान है और लोकविद्या को सम्मान मिलना चाहिए, लेकिन इससे क्या होगा? वार्ता के दौरान ही यह बात उभर कर आई कि ज्ञान के क्षेत्र में जो ऊंच-नीच है उसे दूर करना ही लोकविद्या को सम्मान देना है। ऊंच-नीच न मानना यानि विश्वविद्यालय की शिक्षा को जितना आर्थिक-सामाजिक सम्मान है, उतना ही सम्मान लोकविद्या को भी मिले, इस बात को उठाना।

चौथे दिन, पोलिटेक्निक के वे छात्र जो अब उद्योगों में कार्य कर रहे हैं, उनके साथ वार्ता रखी गई। ये छात्र लोकविद्याधर समाज से आए हुए हैं और अब इंदौर के आसपास लगे विभिन्न उद्योगों में टेक्निशियन के कार्य कर रहे हैं। लगभग 75 टेक्निशियनों की भागीदारी के साथ हुई इस चर्चा में ग्रामीण उद्योगों को बढ़ाने और उनकी ग्रामीण खपत कैसे हो इस पर चर्चा हुई। इन टेक्निशियनों ने चिप्स बनाने की कुछ सरल व कारगर मशीनों को बनाया और ज्ञान पंचायत में प्रदर्शन के लिए भी रखा।

ज्ञान पंचायत को गांवों में ज्ञान की चर्चा का एक प्रभावी स्थान बनाने की पहल के संदर्भ में संजीव कीर्तने ने बताया कि कुछ गांवों में पांच खम्भों पर खड़ा एक झोपड़ीनुमा ढांचा बनाया गया है। यह ढांचा ज्ञान पंचायत का प्रतीक है, जिसके पांच खम्भे पांच प्रमुख ज्ञानी समाजों—किसान, कारीगर, आदिवासी, महिलाएं व छोटा दुकानदार—के प्रतीक हैं। ये समाज मिलकर लोकविद्या को समृद्ध बनाते हैं। इनकी एकता में, इनके ज्ञान में एक खुशहाल समाज के निर्माण का आधार है। इस झोपड़ीनुमा ढांचे को भी ज्ञान पंचायत में प्रदर्शन के लिए रखा गया।

ज्ञान पंचायत में लोकविद्या विचार से कार्य कर रहे विभिन्न शहरों के कार्यकर्ताओं ने भी हिस्सा लिया। वाराणसी से सुनील सहस्रबुद्धे, चित्रा सहस्रबुद्धे, हैदराबाद से बी. कृष्णराजुलु, ललित कौल, पूना से के. सुरेन्द्रन, झांसी से कृष्ण गांधी और नागपुर से गिरीश सहस्रबुद्धे ने हिस्सा लिया। होशंगाबाद से शंभूनाथ गुप्त और उदयपुर से राहुल भी ज्ञान पंचायत में शामिल हुए।

ज्ञान पंचायत में एक लोकविद्या समन्वय समिति बनाई गई जो लोकविद्या की प्रतिष्ठा और स्थानीय बाजार के निर्माण के रास्तों को प्रशस्त करने की दिशा में कदम उठाएगी। लोकविद्या नौजवान सभा बनाने की बात पर भी विचार हुआ।

•

सारी सत्ता भविष्य के मुक्त विश्वविद्यालय में बसे

यूरोप के कुछ समूह Edu-factory (एडु-फेक्टरी यानि शिक्षा-कारखाना) के नाम से इंटरनेट पर एक व्यापक ज्ञान संवाद चलाते हैं। इसमें यूरोप के छात्र आंदोलन और एक नए विश्वविद्यालय के विचार पर बढ़िया बहसें चलती हैं। विद्या आश्रम के कई सदस्य इन बहसों में सक्रिय भागीदारी करते हैं। हाल ही में इस संवाद पटल पर डेनमार्क की राजधानी कोपेनहागन में मुक्त विश्वविद्यालय के नाम से किए गए एक प्रयोग के बारे में छपा।

जून 18, 2011 की मुक्त विश्वविद्यालय प्रतिरोध समिति की ओर से जेकब जेकसन द्वारा जारी किया और लीना दोकुज़ोविक ने जिसे एडू-फेक्टरी में उपलब्ध कराया उसका संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद हम नीचे दे रहे हैं।

सभी ज्ञान की गतिविधियों के बाजारीकरण के वर्तमान दौर में कोपनहागन मुक्त विश्वविद्यालय अनुसंधान और सीखने के मुक्तिदायी पक्षों को दोबारा जिन्दा करने का प्रयास रहा। शिक्षा और अनुसंधान पर बड़ी पूंजी के कब्जे को देखते हुए हम विश्वविद्यालय का विचार जीवन में वापस लाना चाहते थे। जीवन से यहां हमारा मतलब लोगों की उस रोजमर्रे की जिन्दगी से है जो पूंजीवाद के अंतर्विरोधों के बीच फंसी-फंसाई चलती रहती है। हम एक मुक्त विश्वविद्यालय का ऐसा स्व-संगठित संस्थागत रूप बनाना चाहते थे जहां ज्ञान का निर्माण, सीखना और दक्षताओं को बांटना रोजमर्रे से जोड़ा जाय। यह बहुउद्देश्यीय प्रयास थोड़ा काल्पनिक आदर्शवादी जरूर था किन्तु व्यावहारिक और प्रयोगवादी है। हमने कोपनहागन के अपने फ्लैट (घर) को 2001 में एक विश्वविद्यालय घोषित कर दिया। इस परिवर्तनकारी मौखिक क्रिया ने हमारे फ्लैट को विश्वविद्यालय बना दिया। घर की व्यवस्थाओं में थोड़े से मामूली परिवर्तन करने पड़े, जिससे लोग वहां रुक सकें, अपने विचार प्रस्तुत कर सकें, दस्तावेजों पर शोध कर सकें, फिल्में दिखा सकें और अपनी कलाकृतियां व दस्तावेज प्रस्तुत कर सकें। हमारा घर सामुदायिक ज्ञान व बदलती आकांक्षाओं की निर्माण प्रक्रियाओं को समर्पित एक सार्वजनिक संस्था बन गया।

कोपनहागन मुक्त विश्वविद्यालय का माहौल ही यह था कि ज्ञान विचारधारा सापेक्ष होता है, जबकि पारंपरिक विश्वविद्यालय में यह पक्की मान्यता होती है कि ज्ञान की प्रक्रियाएं नीति निरपेक्ष हों तभी सत्य शोधक हो सकती हैं। हमारा विश्वविद्यालय सामाजिक और राजनैतिक विचारों से प्रेरित शोध का स्थान बन गया। इसके छः साल के अस्तित्व में 5 विषय प्रमुख रहे : स्त्री-वादी संगठन, कला और आर्थिकी, भगोड़ी आत्मनिष्ठता, टेलिविजन/मीडिया सक्रियतावाद और कला-इतिहास। हमने उन लोगों को खुला निमंत्रण दिया जिन्हें हमारे दृष्टिकोण व विषयों में रुचि थी। शोध की परियोजनाएं आपस में विस्तृत बात करके और साथ में समय बिताकर तैयार की गई। जोर प्रक्रिया पर होता था न कि अंत में तैयार होने वाली वस्तु पर। जगह-जगह पर स्व-संगठित विश्वविद्यालय अंकुरित होने लगे। चूंकि ये सब विश्वविद्यालय रोजमर्रे से जुड़े हुए थे, रोजमर्रे की विविधता उनकी बनावट व दिशाओं की विविधता में दिखाई देने लगी। इसका मतलब यह था कि वैश्वीकरण के दौर का विश्वविद्यालय कई उपलब्ध प्रकारों में से केवल एक प्रकार है जो पूंजी से निर्देशित है और छात्रों को उपलब्ध कराया जा रहा है।

कोपनहागन मुक्त विश्वविद्यालय कालांतर में थोड़ा स्थिर हो चला। हमारा कला जगत व विश्वविद्यालय में मुक्तिदायी शिक्षा के विचार से संबंधित संवाद में ठहराव आ गया। इसलिए 2007 के जाड़ों में हमने कोपनहागन मुक्त विश्वविद्यालय को बंद कर दिया। यह प्रयोग छः साल चला। इन वर्षों में ज्ञान की अर्थ व्यवस्था बड़ी तेजी से बढ़ी। इंटरनेट पर संपर्क समूह, संपर्क और संचार की नई जीवनशैली और बौद्धिक संपदा जैसे विचार ज्ञान की आर्थिक गतिविधियों को हमारे समाज के हर आंतरिक और दूरस्थ जगहों पर ले गए। सरकारों ने बड़े पैमाने पर सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों का निजीकरण कर दिया और ये स्थान उद्योगों के लिए विचारों, आकांक्षाओं और मनुष्यों की कच्चा माल के रूप में आपूर्ति करने लगे। लेकिन यह सब असंतोष, असहमति और आलोचना को दबाने के लिए काफी नहीं पड़ा। उन्हें कुछ और कदमों की भी जरूरत थी। दिसंबर 2010 में सरकार से हमें एक पत्र मिला कि संसद ने एक नया कानून बनाया है जिसने कोपनहागन मुक्त विश्वविद्यालय तथा अन्य स्व-संगठित मुक्त विश्वविद्यालयों को गैर-कानूनी करार दिया है। 2010 में डेनमार्क का विश्वविद्यालय कानून बदल गया और 'विश्वविद्यालय' शब्द का प्रयोग करने के लिए सरकार की अनुमति अनिवार्य बना दी गई। हम लोगों ने कोपनहागन में एक नया मुक्त विश्वविद्यालय खोलकर इस कानून को चुनौती देना तय किया है। यह हमारे उस अभियान का हिस्सा है जो शिक्षा के मुक्तिदायी संदर्भों की अनिवार्यता में विश्वास करता है। हमारी यह मांग है कि यह नया विश्वविद्यालय कानून रद्द किया जाय। और स्व-संगठित मुक्त विश्वविद्यालय आज के और भावी समाज के ज्ञान के निर्माण से संबंधित संवाद का हिस्सा बने रहे।

हमारा आवाहन है कि सब लोग अपने-अपने मुक्त विश्वविद्यालय बनाएं, अपने घरों में, काम के स्थानों पर, चौराहों पर, जंगलों में, सभी जगह।

सारी सत्ता भविष्य के मुक्त विश्वविद्यालयों में बसे।

•

सथवां गांव में जमीन बचाने का सफल संघर्ष

लक्ष्मण प्रसाद मौर्य

परियोजना : वरुणा नदी को प्रदूषण मुक्त रखने के उद्देश्य से वाराणसी जिले में सारनाथ के पास सथवां गांव में सरकार ने सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट बैठाने का निश्चय किया। इस प्लांट में शहर से सीवर का पानी लाकर ट्रीट करने का कार्यक्रम था। इसमें कचड़ायुक्त जल को शोधित करके कचड़े को अलग तथा जल को अलग करने का प्रावधान होता है। सथवां गांव में 120 एम.एल.डी. क्षमता वाला प्लांट बैठाने की योजना थी। सथवां गांव से साथ-आठ किमी दूरी पर दीनापुर में पहले से ही 80 एम.एल.डी. क्षमता वाला प्लांट बैठाया गया है, जो कि अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूरी तरह फेल है। दीनापुर के किसानों की 49 एकड़ जमीन इस परियोजना हेतु ली गई थी जो आज तक अपनी भूमि के उचित मुआवजे के लिए कोर्ट में लड़ रहे हैं। गंदे पर्यावरण, दूषित पेयजल तथा भयंकर बीमारी की समस्याओं को झेल रहे हैं। अब सथवां गांव में भी ये खतरे किसानों के सर पर मंडराने लगे थे।

प्रशासनिक कार्यवाई तथा गांव में हलचल : पिछले लगभग 2 वर्षों से वरुणा नदी से सथवां गांव की तरफ गहरे नाले में बड़ी-बड़ी पाईप लाईन बिछाने का काम चल रहा था। यह कार्य सथवां की तरफ जा रहे सभी मार्गों पर चल रहा था। अभी किसान शांत थे। कुछ जागरुक लोग इस विषय पर चर्चा अवश्य करते मिल जाते थे। परंतु विगत छः माह पूर्व जब प्रशासन ने सथवां गांव में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट बैठाने के लिए जमीन अधिग्रहण की कार्यवाई की धारा लगाना शुरू किया तो किसानों के कान खड़े हो गए। गांव में छोटी-छोटी मीटिंग व गोष्ठियों का सिलसिला शुरू हुआ। गांव के लोगों की जमीन बचाने के संघर्ष व आंदोलन का नेतृत्व कौन करेगा, इसके लिए लोग श्रीमती यशोदा पटेल के पास गए। श्रीमती यशोदा पटेल सूझ-बूझ व विचार वाली महिला हैं तथा विगत पंचायत चुनाव में ग्रामप्रधान पद की प्रत्याशी रह चुकी हैं। गांव के लोगों के तीव्र अनुरोध के चलते श्रीमती यशोदा पटेल ने संघर्ष के नेतृत्व का निर्णय लिया।

संघर्ष व आंदोलन : सर्वप्रथम श्रीमती यशोदा पटेल की अगुवाई में सथवां गांव के किसान जिलाधिकारी से मिलकर अपनी समस्या के संदर्भ में वार्ता किए। किसानों ने कहा कि सथवां गांव के किसान छोटी-छोटी जोत वाले किसान हैं। जमीन उपजाऊ है। सब्जी की खेती बहुतायत मात्रा में की जाती है। इस गांव में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट लगाना सर्वथा अनुचित है। जिलाधिकारी ने बेमेल उत्तर देते हुए कहा कि जमीन सरकार की है, रोड सरकार की है। बिजली सरकार की है। आप सरकार की सुविधा लेते हैं। सरकार जब और जहां चाहे जमीन ले सकती है। गांव के लोगों ने चेताया कि अगर जमीन, सड़क और बिजली सब सरकार की है तो सरकार किसकी है तथा सरकार को बनाता कौन है? जिलाधिकारी से लोगों ने कह दिया कि अपनी जान देकर भी हम जमीन को बचाएंगे।

गांव में वापस आकर किसानों ने आपस में पंचायत की तथा 15 अप्रैल 2011 से गांव में ही धरना देने का निर्णय लिया। इसके लिए सथवां और हृदयपुर की किसान संघर्ष समिति बनी। संघर्ष में शामिल होने के लिए भारतीय किसान यूनियन की जिला इकाई से लोगों ने संपर्क किया तथा आंदोलन को तेज करने के लिए गांव में बुलाया। इस आंदोलन में भारतीय किसान यूनियन के मंडल अध्यक्ष श्री जगदीश सिंह यादव, मंडल महासचिव श्री दिलीप कुमार 'दिली' तथा वाराणसी जिले के पदाधिकारी शामिल हुए। गांव में प्रभात फेरियों तथा जन-जागरण यात्राओं का दौर जारी रहा। सारनाथ में सभा की गई। लगभग डेढ़ माह तक धरना चलता रहा, सैकड़ों की संख्या में महिलाएं अपना कामकाज छोड़कर धरना-स्थल पर डटी रहीं, परंतु कोई सक्षम अधिकारी धरना-स्थल पर नहीं आया। इसी बीच भारतीय किसान यूनियन वाराणसी ने सथवां गांव में एक शिविर करने का निर्णय लिया। वाराणसी जिले के अन्य सभी क्षेत्रों तथा भूमि अधिग्रहण वाले स्थानों से किसानों तथा किसान नेताओं को सथवां गांव में 8 जून को शिविर में बुलाया गया।

इस शिविर में विस्थापन के सवाल को प्रमुख विषय बनाया गया। विभिन्न वक्ताओं ने अपने विचार रखे। सुनील सहस्त्रबुद्धे ने अपनी बात रखते हुए कहा कि जमीन पर मालिकाना हक किसान का है। मठ, सरकारी संस्थान और कोई भी दूसरी एजेंसी जमीन पर मालिकाना हक जताने का अधिकार नहीं रखती। विस्थापन किसान को उसके अपने ज्ञान, लोकविद्या के इस्तेमाल से वंचित करता है और लोकविद्या के बल पर जीना किसान का मौलिक अधिकार है। इस अधिकार को कोई नहीं छीन सकता। आंदोलन को पूरी मजबूती प्रदान की जाएगी। भारतीय किसान यूनियन के मंडल अध्यक्ष श्री जगदीश सिंह यादव ने कहा कि किसान के रोजी-रोटी का सवाल है। जमीन और जीविका का सवाल है। किसान के साथ अन्याय और अत्याचार हो रहा है। किसानों के मर्जी की कहीं कोई बात नहीं है। भारतीय किसान यूनियन के एक कार्यकर्ता के नाते मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता और भरी सभा में यह घोषणा करता हूं कि जब तक किसानों की जमीन उन्हें वापस नहीं मिल जाती तब तक मैं अपने घर चन्दौली में कदम नहीं रखूंगा। आप लोगों के साथ चौबीसों घंटे आपके आंदोलन में बैठा रहूंगा।

सथवां के इस आंदोलन में समाजवादी पार्टी और कांग्रेस पार्टी के नेतागण आंदोलन के साथ खड़े हुए।

निर्णायक दौर : धरना कार्यक्रम के 50 दिन पूरे हो जाने के बाद जिलाधिकारी व डी. आई.जी. धरना स्थल पर आए। किसानों ने उपजाऊ भूमि को दिखाया तथा वार्ता हुई। जिलाधिकारी ने आश्वासन दिया कि एस. टी. पी. के लिए दूसरा स्थान खोजा जा रहा है। धरना पर डटे किसानों ने कहा कि जब तक हमें लिखित रूप में नहीं मिल जाता तब तक धरना चलता रहेगा। इसके बाद जिले के तमाम अधिकारियों के आने तथा उनसे वार्ता करने का क्रम जारी रहा। धरने के 59वें दिन अधिकारी समझौता करने का दबाव बना रहे थे। वे इतना लिखकर दे रहे थे कि किसानों की मर्जी के बिना उनसे जमीन नहीं ली जाएगी। प्लांट अन्यत्र लगाया जाएगा। सथवां की जमीन पर प्लांट नहीं लगेगा। परंतु किसान इस बात पर अड़े रहे कि उन्हें यह लिखित दिया जाय कि जमीन अधिग्रहण की जो धारा-4, 6 (17) लगाई गई है उसे समाप्त करने के लिए प्रशासन अपनी संस्तुति शासन को भेजेगा। अंत में शाम के समय जिलाधिकारी महोदय की उपस्थिति में यह मांग अधिकारियों ने लिखित रूप में मान ली।

गांव के पहल करने वाले प्रमुख किसान : यशोदा सिंह पटेल की अध्यक्षता में बलिराम मास्टर, शंकर प्रजापति, चांदी सिंह, मेवालाल पटेल, श्यामप्यारी देवी, मोतीलाल पटेल, जवाहिर पटेल आदि रहे।

•

कूड़ा डंपिंग प्लाण्ट के खिलाफ किसानों का ऐलान-ए-जंग

प्रेमलता सिंह

स्थिति : वाराणसी के काशीविद्यापीठ ब्लाक के करसड़ा गांव में कूड़ा डंपिंग प्लाण्ट बनाने के लिए किसानों की कृषि भूमि कुल 40 एकड़ का अधिग्रहण होना है। इसके विरोध में 29 जून से यहां के किसान अनिश्चितकालीन धरने पर बैठ गये हैं। नगर निगम ने ए टु जेड कंपनी को यह भूमि 30 वर्ष के लिए लीज पर देने का निर्धय लिया है। ग्रामसभा की लगभग 10 बीघा बंजर भूमि भी अधिग्रहित कर ली गई है। इस परियोजना के चलते नौ गांव चूरामनपुर, करसड़ा, बेटावर, रुदौली, बच्छाव, सोफापुर, हरिदत्तपुर, गोसाईपुर, पतेरवां और केन्द्र सरकार द्वारा बनाई गई बुनकर कॉलोनी के निवासी प्रदूषण से प्रभावित होंगे। कूड़ा डंपिंग प्लाण्ट से प्रत्येक गांव की दूरी 100-500 मीटर तक है, गंगा नदी 600 मीटर की दूरी पर है। प्लाण्ट से 400 मीटर की दूरी पर एक निजी शिक्षा संस्थान बन रहा है। प्लाण्ट से बी.एच.यू. 6 किमी, चितईपुर 7 किमी और वाराणसी शहर 8 किमी की दूरी पर है।

पीड़ित किसान समस्या से मुक्ति पाने की तलाश में : 21 अप्रैल 2011 को करसड़ा में लोकविद्या मंच की ओर से एक पंचायत आयोजित की गई थी, जिसमें बड़े पैमाने पर प्रभावित गांव के किसान स्त्री-पुरुष, भारतीय किसान यूनियन, रा. सा. विकास मंच शिवाला, साझा संस्कृति मंच, लोकचेतना समिति, नाई समाज-दशाश्वमेध, किसान संघर्ष समिति-सथवां, के लोग सम्मिलित रहे। लोकविद्या मंच की इस पंचायत में मुख्य सवाल यह रहा कि शहर की गंदगी गांव क्यों ढ़ोयेंगे? वहां के किसानों ने करसड़ा में कूड़ा डंपिंग प्लाण्ट बनाये जाने पर गहरा रोष जाहीर किया। प्रभावित किसानों ने पंचायत में वस्तुस्थिति की जानकारी दी और भारतीय किसान यूनियन के नेतृत्व में अपना विश्वास प्रकट किया। इसी दिन विभिन्न संगठनों के साथ कूड़ा डंपिंग प्लाण्ट के खिलाफ भूमि अधिग्रहण को लेकर शीघ्र ही एक और पंचायत करने का निर्णय लिया।

28 जून 2011 को दूसरी पंचायत आयोजित हुई। कुल 50 स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। पंचायत के अध्यक्ष श्री चुन्नीलालजी थे। किसान महिला श्रीमती चम्पा देवी ने बताया कि ग्राउण्ड बनते समय हमने विरोध किया तो तीन-तीन बार मुझे ढकेल दिया लेकिन मैं अपनी बेटी के साथ डटी रही। हमें तब ऐसे किसी संगठन की जानकारी नहीं थी। यदि हमारे साथ संगठन के लोग रहेंगे तो हम मरते दम तक लड़ेंगे। गांव की सभी किसान महिलाओं को आगे आना चाहिए।

देवेन्द्र यादव का कहना है कि हमें कूड़ा गिरने से पहले ही धरना पर बैठना होगा हम इसके लिए तैयार हैं। कंपनी वाले गांव के लोगों को धमकाए-डराए हुए हैं लेकिन अब हम लड़ेंगे। मुनरादेवी और चमेलाजी दृढ़ संकल्प के साथ बोलीं, ''हम अकेले सदा से लड़ते रहे हैं पर अब हमें ताकत हो गई है''। डॉ. गजानंद कश्यप ने बताया कि कूड़ा डंपिंग से पीने का जल प्रदूषित होगा और गंदगी बढ़ेगी। सरकार कहती है कि जमीन किसान की मर्जी से ली जाएगी लेकिन किसानों से वार्ता तक नहीं की गई। 70% किसान सहमत नहीं हैं, कुछ लोगों को बहकाकर जमीन ले लिया गया। ललित नारायण मौर्य का कहना है कि यदि नहीं लड़े तो न खेती बचेगी न किसान, न गांव बचेंगे न पानी, शहरी कूड़ा गंगा को भी प्रदूषित करेगा। गांव और गांववासियों का विनाश करने वाले इस विकास-मॉडल का विरोध करना बहुत ही आवश्यक है। उन्होंने दीनापुर के प्लाण्ट का उदाहरण दिया, जहां उस गांव के लड़कों का विवाह होना भी मुश्किल हो गया है। दयारामजी का कहना है कि 10 लोगों की जमीन 4000 रुपये बिस्वे में धोखे से लिखा ली गई। भृगुनाथ सिंह पटेल ने जोर देकर बताया कि अधिकारी बोले कि यदि जमीन नहीं दोगे तो जमीन मुफ्त में ले ली जाएगी, जो पैसा मिल रहा है ले लो। आपस में मीटिंग करके जमीन के मसले लेकर मनोज राय पप्पू मार्च 2008 में लखनऊ गए तो अधिग्रहण रुक गया लेकिन कुछ दिन बाद पुनः कार्य शुरू हो गया। तुरंत कचहरी में इसकी वाबत लिखकर दिया गया, परंतु जज ने पूरे मामले को खारिज कर दिया। चार किसानों की कुल 13 बीघा जमीन 4000/- बिस्वा के हिसाब से अधिग्रहित कर ली गई। रामूपाल का कहना है कि यदि हम आज इसका विरोध नहीं किए तो खेती तो नष्ट होगी ही पानी और हवा भी रहने लायक नहीं रह जाएगी। हम तन-मन-धन से लड़ने के लिए तैयार हैं।

भारतीय किसान यूनियन के जिलाध्यक्ष लक्ष्मण प्रसाद मौर्य ने आगे की रणनीति का विचार करने का प्रस्ताव रखा। सभा का संचालन भारतीय किसान यूनियन के सचिव संतोष कुमार संविज्ञ ने किया। दिलीप कुमार 'दिली', प्रेमलता सिंह, मालती देवी, शिवपूजन, मुलरा देवी, भागमनी आदि ने अपने विचार व्यक्त किए।

•

लोटस पार्क के विरोध में किसान पंचायत

नन्दलाल

वस्तुस्थिति : सारनाथ बरईपुर में पर्यटन विभाग की ओर से लोटसपार्क बनाने की योजना है। कुल भूमि 84 बीघा है। 80 वर्ष से किसानों के 36 परिवार खेती करते आ रहे हैं। अब कुल लगभग 100 परिवार हो गए हैं। इस भूमि में मुख्य रूप से वे लोग बरसात के मौसम में सिंघाड़े और चावल की खेती करते हैं। सिंघाड़े और चावल की फसल के बाद नवंबर-दिसंबर महीने में गेहूं एवं सब्जियों की खेती करते हैं। यदि इस कृषि योग्य भूमि का इस्तेमाल लोटस पार्क जैसे विलासिता के लिए किया जाएगा तो सैकड़ों परिवारों के समक्ष रोजी-रोटी की समस्या खड़ी होगी।

वर्तमान स्थिति : पिछले कुछ दिनों से पर्यटन विभाग किसानों को बिना किसी सूचना के उनकी उक्त भूमि पर भारी जेसीबी मशीन लगाकर खुदाई का कार्य शुरू कर दिया। किसान बहुत चिन्तित हो गए, जीविका छीने जाने से जीवन बचाने का सवाल खड़ा हो गया। उन लोगों को जब कहीं राह नहीं मिली तब भारतीय किसान यूनियन से संपर्क किए। एक पंचायत लगाने का विचार लोगों ने रखा। यह पंचायत महलिया माई मंदिर बरईपुर, सारनाथ में 25 जून 2011 को आयोजित की गई।

किसानों का कानूनी संघर्ष : भाईराम किसान के अनुसार 29 वर्षों से सरकार से मुकदमा लड़ रहा हूं। नगर निगम दो-दो बार हार गया। अब कचहरी से मुकदमा खारिज हो गया। एक ही दिन में 30 किसानों को जमीन से बेदखल कर दिया। घनश्याम पाण्डेय ने बताया कि इन लोगों के बाप-दादा खेती करते थे। अब ये लोग करते हैं। कमिश्नरी में मुकदमा चला जब बेदखली का आदेश हुआ था तब स्टे लेने की प्रक्रिया टुकड़े-टुकड़े अवधि (4 माह, 6 माह, 2 माह) में मिली। हम लोग दिवानी का मुकदमा करेंगे। इनका मकान ताल में आ रहा है। लालजी पाण्डेय अपनी कुल 44 बिस्वा खेती की जमीन का कमिश्नरी से स्टे लिए थे पर वह खत्म हो गया है। इनका कहना है कि हम किसी भी सूरत में जमीन नहीं देंगे।

संघर्ष की तैयारी : 25 जून की पंचायत के अध्यक्ष श्री रामलखन बनाए गए। पंचायत में 125 से 150 किसान, स्त्री-पुरुष शामिल रहे। श्रीमती भगवन्नी देवी जमीन अधिग्रहण से होने वाले कष्टों को बताते हुए बोली कि जमीन ही हमारी जीविका है। हमें इसकी कीमत नहीं जमीन चाहिए, लाख रुपये मंजूर नहीं है हम दस रुपये रोज कमाना चाहते हैं, जो हम जमीन से प्राप्त कर लेंगे। कलावती पाण्डेय तन-मन-धन से जूझने और मरने के लिए तैयार हैं। उनका कहना है कि पांच गांव की जमीन है। दाना-पानी छोड़कर हम सती होंगे और जमीन लेकर रहेंगे। कृष्णकुमार क्रांति ने कहा कि सथवां की लड़ाई महिलाओं के बल पर लड़ी गई, जैसे बेटी का महत्त्व है, उसी तरह जमीन का महत्त्व है। सावित्री, राधा देवी और मकतुलाजी ने कहा कि हम लोग जमीन छोड़ेंगे नहीं चाहे कुछ भी हो जाय।

भारतीय किसान यूनियन के जिला अध्यक्ष श्री लक्ष्मण प्रसाद ने सथवां, डोमरी, कटेसर, ट्रांसपोर्ट नगर, मोहन सराय, रविदास पार्क की जमीनों को अधिग्रहण से बचाने के लिए किसानों द्वारा किए गए आंदोलन का हवाला देते हुए कहा कि भारतीय किसान यूनियन किसानों की भूमि बचाने के लिए हमेशा उनके साथ है और न्याय की पक्षधर है। किसान अपनी लोकविद्या के बल पर खेती कर अपनी जीविका चलाता है। लोकविद्या के बल पर जीने का उसका अधिकार कोई नही छीन सकता। न्याय की सदा विजय होती है।

पंचायत महलिया माई से उठकर तालाब में खुदाई के स्थान को देखने गई। किसानों ने काम को बंद करवा दिया और उसी जगह पर पुनः पंचायत करके आगे की कार्य योजना निर्धारित किया।

भारतीय किसान यूनियन सारनाथ की इकाई का गठन किया गया। संघर्ष की सूचना जिलाधिकारी को देने के लिए एक ज्ञापन तैयार किया गया। ऐलान हुआ कि यदि हमारी मांग 3 जून तक नहीं मानी गई तो हम सभी लोग अनिश्चित कालीन धरना पर बैठेंगे।

विचार व्यक्त करने वालों में प्रेमलता सिंह, भारतीय किसान यूनियन के मंडल महासचिव दिलीप कुमार 'दिली', सतीश राजभर, शिवमूरत राजभर, खनमन राजभर, राधा देवी, सावित्री राजभर, उषादेवी, प्रभादेवी, जगनंदन, पप्पू राजभर, चन्द्रावती, घुट्टुर कुत्थन, रमला देवी, मखचु, सतीश, अजय जैन, बबलू कुमार, नन्दलाल आदि थे। पंचायत का संचालन रामप्रसाद ने किया।

•

व्यंग

चंदनवुड चिल्ड्रन स्कूल...!

के. पी. सक्सेना

आंख मुलमुल...गाल गुलगुल...बदन थुलथुल, मगर आवाज बुलबुल! वे मात्र वन पीस तहमद में लिपटे, स्टूल पर उकड़ूं बैठे, बीड़ी का टोटा सार्थक कर रहे थे! रह-रहकर अंगुलियों पर कुछ गिन लेते और बीड़ी का सूंटा फेफड़ों तक खींच डालते थे! जहां वे बैठे थे वहां कच्ची पीली ईंट का टिन से ढका भैंसों का एक तवेला था! न कोई खिड़की न रौशनदान! शायद उन्हें डर था कि भैंसें कहीं रौशनदान के रास्ते खिसक न जाएं! सुबह-सबेरे का टाइम था और भैंसें शायद नाश्तोपरांत टहलने जा चुकी थीं! तवेला खाली पड़ा था! उन्होंने मुझे भर आंख देखा भी नहीं और बीड़ी चूसते हुए अंगुलियों पर अपना अंतहीन केल्क्यूलेशन जोड़ते रहे!...

मैंने उनसे संदलवुड चिल्ड्रन स्कूल का रास्ता पूछा तो उनकी आंखों और बीड़ी में एक नन्हीं-सी चमक उभरी!...धीरे-से अंगुली आकाश की ओर उठा दी गोया नया चिल्ड्रन स्कूल कहीं अंतरिक्ष में खुला हो। मगर मैं उनका संकेत समझ गया! नजर ऊपर उड़ाई तो तवेले की टिन के ऊपर एक तख्ती नजर आई, जिस पर गोराशाही अंग्रेजी में कोयले से लिखा था—''दि संदलवुड चिल्ड्रन स्कूल!...प्रवेश चालू! इंगलिश मीडियम से कक्षा 6 तक मजबूत पढ़ाई! प्रिंसिपल से मिलें!...'' तख्ती पढ़कर मैं दंग रह गया!...यही है चंदन लकड़ी स्कूल?...चंदन दरकिनार, कहीं तारपीन या कोलतार तक की बू नहीं थी! मेरी मजबूरी अपनी जगह थी! मुहल्ले के गनेशीलाल के पोते के दाखिले की जिम्मेदारी मुझ पर थी! खुद गनेशीलाल उम्रभर पढ़ाई-लिखाई की इल्लत से पाक रहे और अपने बेटे को भी पाक रखा! सिर्फ गुड़ की किस्में जान लीं और खानदानी कारोबार चलाते रहे! मगर पोता ज्यों ही नेकर में पांव डालने की उम्र को पहुंचा, उनकी पतोहू ने जिद पकड़ ली कि छुटकन्ना पढ़िहैं जरूर, और वह भी निखालिस इंगलिश मीडियम से!...उसकी नजर में हिन्दी मीडियम से पढ़ने से बेहतर है कि गुड़ बेच ले! पतोहू ने अपने मायके में देखा कि अंग्रेजी मीडियम से पढ़े छोकरे कैसे फट-फट आपस में इंगलिश में गाली-गलोज करते हैं!...एक स्मार्टनेस-सी रहती है!...चुनांचे गनेशीलाल मेरे पीछे पड़ गए कि छोकरे को कहीं अंग्रेजी मीडियम में डलवा ही दूं!...उधर जुलाई-अगस्त की झड़ी लगते ही चिल्ड्रन स्कूलों में वह किच-किच होती है कि आदमी अपना मरा हुआ बाप भले ही दोबारा हासिल कर ले, मगर बच्चे को स्कूल में नहीं ठूंस सकता!...अंग्रेजी के 'डोनेशन' और हिन्दी के 'अनुदान' का फर्क इसी वक्त समझ में आता है आदमी को! अनुदान के बीस रुपयों में बच्चा हिन्दी मीडियम में धंस जाता है, मगर डोनेशन तीन अंकों से नीचे होता ही नहीं!...अंग्रेजी की ग्रेटनेस का पता यहीं पर चलता है! खैर...!

शिक्षा संदर्भ में यह एक अच्छी बात है कि बारिश में फूली लकड़ी पर उगे कुकुरमुत्तों की तरह, जुलाई-अगस्त में चिल्ड्रन स्कूल भी दनादन उग आते हैं! हर गली-मुहल्ले में भूतपूर्व लकड़ी की टालों और हलवाइयों की दुकानों पर नर्सरी मोंटेसरी स्कूलों के बोर्ड टंग जाते हैं! हर साइनबोर्ड का यही दावा होता है कि हमारे यहां बच्चा मां की गोद जैसा सुरक्षित रहेगा और आगे चलकर बेहद नाम कमाएगा!...ऐसे ही दुर्लभ तथा नए उगे स्कूलों में 'संदल वुड चिल्ड्रन स्कूल' का नाम भी मेरे कानों में पड़ा था! नाम में ही चंदन-सी महक और हाली-वुड जैसी चहक थी!...और अब मैं टिन जड़ित, रोशनदान रहित उसी स्कूल के सामने खड़ा था!...बीड़ी तहमद वाले थुलथुल सज्जन ने आखिरी कश खींचकर बीड़ी को सद्गति तक पहुंचाया, और तहमद के स्वतंत्र कोने से मुंह पोंछकर आंखों-ही-आंखों में पूछा कि क्या चाहिए?...मैंने दोनों हाथों से बच्चे का साइज बताया और धीरे से पूछा कि प्रिंसिपल कहां हैं...कब उपलब्ध होंगे? वे भड़क गए! गुर्रा कर बोले, ''हम आपको क्या नजर आवे हैं? टाई-कमीज अंदर टंगी है तो हम प्रिंसिपल नहीं रहे? जरा बदल को हवा दे रहे थे! आप बच्चा और फीस उठा लाइए! भर्ती कर लेंगे!'' मैं सटपटा गया और इस बार उन्हें इस ढंग से अभिवादन पेश किया जिस ढंग से अमूमन अंग्रेजी मीडियम में होता है! यह पूछने पर कि बाकी टीचिंग स्टाफ कहां हैं, उन्होंने बताया कि बाकी का स्टाफ भी वे खुद ही हैं! क्लास थ्री स्टाफ भी, और क्लास फोर (झाड़ू, पोंछा, सफाई) भी!...दो अदद लेडी टीचर भी हैं, जिनमें से एक उनकी मौजूदा पत्नी हैं और दूसरी भूतपूर्व! फिलहाल दोनों घर में लड़ाई-झगड़े में मसरूफ हैं! चट से टीचिंग सेशन शुरू होते ही आ जाएगी!...अभी कुल तेईस बच्चे नामजद हुए हैं! पच्चीस पूरा होते ही ब्लैकबोर्ड मंगवा लेंगे और पढ़ाई जो है उसे शुरू करवा देंगे!...मुझे तसल्ली हुई! डरते-डरते पूछा, ''खिड़कियां, रौशनदानों, पंखों और बैंचों वगैरा की झंझट आपने क्यों नहीं रखी?''...वे दूरदर्शी हो गए!...आप चाहते हैं कि बच्चों को अभी से आरामतलब बना दें? ग्लासगो कभी गए हैं आप? वहां के सन् चालीस के पैटर्न पर हमने स्कूल शुरू किया है! बच्चों को, उसे क्या कहते हैं...हां...हार्डशिप की आदत डालनी होगी!...फिर धीरे-धीरे सब कुछ हो जईहैं!...अगले साल रौशनदान खुलवा देंगे...फिर अगले साल पंखों वगैरा की देखी जाएगी!...पईसा चाहिए, कि नाहीं चाहिए?...पच्चीस बच्चों की फीस लइके शुरू में ही आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी खोल दें का?...टाइम पास होते-होते सब कुछ हुई जईहैं!...बच्चा ले आवो!...दो ही सीटें बची हैं। हैं गी!...।''

तो साहब, संदलवुड चिल्ड्रन स्कूल के प्रधानाचार्य के श्रीवचन सुनकर मैं काफी से भी अधिक प्रभावित हुआ! सारी हिम्मत बटोरकर एक अंतिम प्रश्न पूछा, ''मास्साब! वैसे तो अपने इंडिया में चारे-भूसे की कमी चाहे भले ही हो, मगर बच्चों का टोटा नहीं है! फिर भी अगर दो बच्चे और न हाथ लेंगे तो क्या आप स्कूल डिजाल्व कर देंगे''? वे पुनः भड़क गए!...आए गए सुबे-सुबे नहसूत फैलाने!...जिस भगवान ने तेईस बच्चे दिए, वह दो और नाहीं भेजिहें का? डिजालव कर भी दें तो कौन-सी भुस में लाठी लग जईहें?...पहले इस टिन में पक्के कोयला का गुदाम रहा!...सोचा कि इस्कूल डाल लें! डाल लिया!...इन्ते पढ़े-लिखे हैंगे कि कक्षा 6 तक पढ़ाए ले जावें! नाहीं चल पईहें इस्कूल तो कोयले का लैसंस कोई खारिज हुई गवा है का?...वो लपक के बच्चा ले आवो!...''

मैं लपककर चल पड़ा!...रास्ते भर प्रधानाचार्य की उस अंग्रेजी से प्रभावित रहा जो एक फिल्मी गाने ''आकाश में पंछी गाइंग...भौरां बगियन में गाइंग'' जैसी थी! मास्साब दूर तक टकटकी बांधे मुझे उम्मीदवार नजरों से देख रहे थे, गोया कह रहे हों—बच्चा लईहें जरूर! जईहें कहां? इधर मैं यह सोच रहा था कि गनेशीलाल के पोते के भविष्य के लिए गुड़ बेचना मुनासिब रहेगा या संदलवुड चिल्ड्रन स्कूल में अंग्रेजी मीडियम से शिक्षा अर्जित करना।

(नोट : यदि किसी स्कूल का नाम यही हो, तो अन्यथा न लें! नाम काल्पनिक है!)

हिन्दी हास्य संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट से साभार

बुक पोस्ट

दीनापुर का सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट

दूभर हुआ गांव के लोगों का जीना

वाराणसी जिले के चिरईगांव ब्लाक में दीनापुर एक हरा-भरा गांव था। 15-20 वर्ष पूर्व शहर का मैला इस गांव में ले आने की परियोजना के तहत एक सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट बनाया गया। गांव के किसानों की लगभग 50 एकड़ जमीन अधिग्रहित की गई और प्लांट बनाया गया। आज यह हाल है कि यह प्लांट नाकाम हो चुका है, और गांव वालों की जिन्दगी गंदगी में डूब-उतरा रही है। खेती बरबाद हो रही है। बरसात के दिनों में गंदा पानी कारीगरों की बस्ती में करघों के गड्ढों में भर जाता है। ट्रीटमेंट रहित गंदा पानी खुला बहता रहता है और बीमारियां बढ़ाता जा रहा है। पेयजल के स्रोत दूषित हो चुके हैं।

न जाने कितनी बार जिलाधिकारी और ब्लाक प्रमुख को गांव वालों ने पत्र लिखा है। मुलाकात भी की लेकिन आश्वासन के अलावा कुछ नहीं मिलता। किसानों को आज तक मुआवजे की राशि भी नहीं मिली है। ज्यादती तो ये है कि प्लांट बंद हो चुका है और उसी जमीन पर कोई निजी कंपनी का पाइप ढलाई का काम हो रहा है। किसानों के बीच इन सबसे बड़ा रोष है। उनका कहना है कि जमीन हमने इस निजी कंपनी को तो नहीं दी है। हमारी जिन्दगी तबाह करने वाले इस प्लांट को हम क्यों ढोए?

वाराणसी के दक्षिण भाग में सिरगोबर्धनपुर गाँव में नगर निगम शहर का कूड़ा फेंक रहा है। पिछले दिनों वहाँ के किसानों ने संगठित होकर कूड़े से भरे 9 ट्रकों को गाँव के बाहर सड़क पर ही रोक दिया और शहर का कूड़ा गाँव नहीं ढोएगा इस बात को दृढ़ता से कहा। यहीं तरीका शिवपुर के सतबलपुर गाँव के किसानों ने अपनाया और कूड़े को गाँव में नहीं गिरने दिया।

•

किसान अपना ज़मीर रखें, जमीन न दें

करसड़ा गाँव के बच्चेलाल यह नारा किसानों की हर सभा में देते हैं। वाराणसी के चारों तरफ किसानों की जमीनें शहर के विस्तार के लिए ली जा रही हैं। डोमरी और कटेसर गाँव की जमीनें सांस्कृतिक नगर बनाने के नाम पर, मोहनसराय की ट्रांसपोर्टनगर बनाने के नाम पर और गंगा एक्सप्रेसवे बनाने के नाम पर कई गाँवों के किसानों की जमीनें अधिग्रहित किये जाने की योजना है। सभी स्थानों पर किसान जमीन बचाने का संघर्ष चला रहे हैं। सथवाँ और कटेसर के किसानों ने प्रशासन से अपनी जमीनें छुड़ा लेने में सफलता प्राप्त की है और अपनी जमीनें बचा ली हैं। अन्य गाँवों के किसानों को इससे बल मिलेगा। किसान आपस में एकता बनायें।

•

पृष्ठ 1 का शेष

लोकविद्या जन-आंदोलन

का विनाश करके चंद लोगों की जेबें भरी हैं। लोकविद्या जन-आंदोलन इसी बहुमत जनता का ज्ञान आंदोलन है, यानि उन लोगों का ज्ञान आंदोलन है, जिन्हें पूंजी के प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों और राज्य की व्यवस्थाओं ने अज्ञानी घोषित कर रखा है। ज्यादातर लोग यह मानते हैं कि विश्वविद्यालयों के बाहर ज्ञान का सागर है। समाज में ज्ञान का विस्तृत फैलाव है, ऐसा मानने वालों की कोई कमी नहीं है। यानि लोगों के पास ज्ञान है और उस ज्ञान की अनुभूति भी और फिर भी न उन लोगों को और न उनके ज्ञान को ही समाज में सम्मान है। उनके ज्ञान के बल पर अच्छी आय नहीं हो सकती, इसलिए लोग गरीब हैं। सार्वजनिक दुनिया में उनके ज्ञान को सम्मान नहीं है, इसलिए उनके मूल्य और संस्कृति हाशिए पर पड़े रहते हैं। उनके ज्ञान का जन-संगठनों के साथ कोई सीधा संबंध नहीं है, इसलिए उनका कोई राजनैतिक महत्त्व नहीं है। एकऐसे राजनैतिक आंदोलन की जरूरत है, जिसमें लोग अपने ज्ञान के आधार पर गति पैदा करते हैं। लोकविद्या जन-आंदोलन एक ऐसा ही आंदोलन है। प्रस्तावित अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन किसानों, कारीगरों, आदिवासियों, छोटा-छोटा धंधा करने वालों, महिलाओं और नौजवानों के आंदोलनों को एक ज्ञान के मंच पर इकट्ठा करने का प्रयास है। यह उनके ज्ञान का मंच है, लोकविद्या का मंच है। ऐसे ही मंच से यह दावा किया जा सकता है कि लोकविद्या में ही समाधान है।

दुनिया में हो रहे और ज्ञान आंदोलन : दुनिया में कई जगह नए किस्म के आंदोलन शुरू हुए हैं, ऐसे आंदोलन जिनमें एक सर्वथा नई राजनैतिक सोच दिखाई देती है और जिन्हें लोकविद्या जन-आंदोलन कहा जा सकता है। भारत में 'लोकविद्या' का अभियान, बोलिविया से शुरू हुआ 'धरती मां के अधिकार' का आंदोलन, इक्वाडोर में 'प्रकृति के अधिकार' का विचार, वाया कम्पेसिना नाम के अंतर्राष्ट्रीय किसान संगठन का 'खाद्य सम्प्रभुता' का विचार व अभियान तथा यूरोप व अमेरिका में छात्र आंदोलन में आकार ले रहे 'ज्ञान के पूंजीवाद' और 'ज्ञान मुक्ति' के विचार एक नई राजनीतिक बहस को जन्म दे रहे हैं। इन सभी में यह आग्रह है कि लोगों के पास ज्ञान होता है और लोकविद्या साइंस के नाम पर प्रसारित ज्ञान से किसी भी अर्थ में कम नहीं है। समझ यह है कि पिछले सदियों में जनता पर और प्रकृति पर जो कहर ढाया गया है और जो इस सूचना युग के नए साम्राज्य में कई गुना बढ़ गया है, उसे वही लोग ठीक कर सकते हैं, जो आधुनिक ज्ञान की व्यवस्थाओं में समा नहीं गए हैं।

लोकविद्या जन-आंदोलन यह दावा पेश करता है कि दुनिया भर में हो रहे ऐसे ज्ञान आंदोलन, संघर्षों का एक नया बिरादराना बना रहे हैं, लोगों का एक विश्वव्यापी ज्ञान आंदोलन खड़ा कर रहे हैं।

कार्यक्रम : तीन दिवसीय अधिवेशन में पहले दो दिन निम्नलिखित विषयों पर चर्चा होगी :—

- लोकविद्या और लोकविद्या जन-आंदोलन का विचार।
- संघर्ष, जो इन विचारों को प्रेरित करते हैं और उनके लिए जगह बनाते हैं।
- लोकविद्या जन-आंदोलन का संगठन और आगे के लिए विचार।

14 नवंबर को लोकविद्या जन-आंदोलन में भाषा, कला, संचार माध्यम और दर्शन की भूमिका और स्थान पर चर्चा होगी। वे लोग, जो लोकविद्या विचार के साथ काम नहीं करते हैं, उन्हें भी लोगों के ज्ञान आंदोलन पर अपने विचार रखने का समय मिलेगा।

अधिवेशन के दौरान विद्या आश्रम रहने-खाने का इंतजाम करेगा। यात्रा का खर्च भागीदारों को खुद उठाना होगा।

जुलाई और अगस्त के महीनों में अधिवेशन की तैयारी में इंटरनेट पर बहस चलाई जाएगी। जो इस बहस में रुचि रखते हैं और शामिल होना चाहते हैं, हमें खबर करें। ब्लाग पर वैसे भी विचारों का आदान-प्रदान जारी रहेगा। यह ब्लाग भी देखें।

अधिक जानकारी के लिए निम्नलिखित का उपयोग करें :—

- वेबसाइट : www.vidaashram.org
- ब्लॉग : http://lokavidyajanandolan.blogpot.com
- ई-मेल : vidyaashram@gmail.com

निम्नलिखित व्यक्तियों से भी संपर्क किया जा सकता है :—

1. सुनील सहस्रबुद्धे, वाराणसी, उत्तर प्रदेश budhey@gmail.com 09839275124
2. बी. कृष्णराजुलु, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश kkbandi@gmail.com 09866139091
3. अमित बसोले, बास्टन, अमेरिका abasole@gmail.com +1-6176867437
4. प्रेमलता सिंह, वाराणसी, उत्तर प्रदेश vidyaashram@gmail.com 09369124998
5. रवि शेखर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश ravithelight@gmail.com 09369444528
6. अवधेश द्विवेदी, सिंगरौली, मध्य प्रदेश awadhesh.sls@gmail.com 09425013524
7. संजीव कीर्तने, इंदौर, मध्य प्रदेश sanjeev.kirtane48@gmail.com 09926426858
8. गिरीश सहस्रबुद्धे, नागपुर, महाराष्ट्र irigleen@gmail.com 09422559348
9. दिलीप दूबे, देवघर, झारखंड pravah001@sify.com 09431132568
10. अजय, वैशाली, बिहार 09955772332

चित्रा सहस्रबुद्धे, समन्वयक, विद्या आश्रम
vidyaashram@gmail.com, मो. : 09838944822

लोकविद्या पंचायत, मासिक समाचार पत्र, विद्या आश्रम (सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007) की ओर से **डा.चित्रा सहस्रबुद्धे** द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित।
website : vidyaashram.org **Blog :** lokavidyapanchayat.blogspot.com , lokavidyajanandolan.blogspot.com **e-mail :** vidyaashram@gmail.com **Phone :** +91-9838944822
प्रेस : **सत्तनाम प्रिण्टर्स**, एस-1/208 के-1, नई बस्ती, पाण्डेयपुर, सारनाथ रोड, वाराणसी-221002